१९५४-१९५५

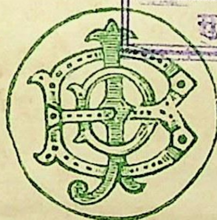
Double cake

23/11/05



मनसा परिक्रमा मंत्रों का स्वाध्याय

दिग्-विज्ञान

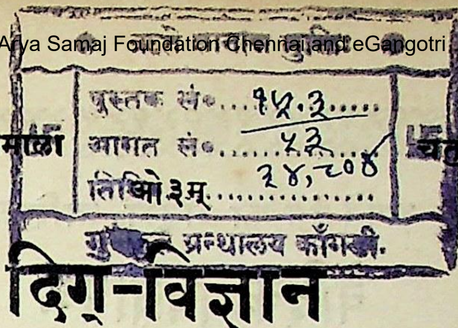




आत्माराम

अमृतसरी

वैदिक विज्ञान ग्रंथमाला — चतुर्थ पुष्प



दिग्-विज्ञान

अर्थात्

संध्याके मनसा परिक्रमा मंत्रों की वैज्ञानिक व्याख्या

लेखक

व्याख्यान वाचस्पति राज्यरत्न श्री आत्मारामजी (अमृतसरी)

रचयिता

संस्कार चन्द्रिका, सृष्टिविज्ञान, शरीरविज्ञान, आत्मस्थानविज्ञान ब्रह्मयज्ञ, वैदिक विवाहादर्श, तुलनात्मक धर्म विचार, सामान्य धर्म इत्यादि इत्यादि



प्रकाशक

जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा

श्री भारत विजय प्रेस, मोदीखाना बडोदा में श्री प्रभुलाल शिवलाल टक्कर द्वारा मुद्रित तथा श्री. ए. ए. दूदानी बी. ए. एलएल बी. व्यवस्थापक जयदेव ब्रदर्स द्वारा प्रकाशित १५–२–२५

प्रथम संस्करण]　　मू. १॥)　　[संवत् १९८१ वि.

ओ३म्

दिग्-विज्ञान

भूमिका

महर्षि दयानन्द कृत पंच महायज्ञ विधि तथा संस्कार विधि से जगत् प्रसिद्ध महान् उपयोगी उत्तम तथा सारगर्भित पुस्तकों में अथर्ववेद के ६ मंत्र '**प्राचीदिगग्नि**' आदि **मनसा परिक्रमा** के नाम से दिये हुए हैं। प्रत्येक आर्य्य दोनों समय इन का पाठ करता है। सनातन धर्मी आर्य भी संध्या समय उक्त ६ मंत्रों का पाठ करते हुए मनसा परिक्रमण के उपरान्त दिशाओं की परिक्रमा भी करते हैं।

महर्षि दयानन्दने इन मंत्रों पर विस्तार रूप से भाष्य नहीं किया पर संक्षिप्त रूप से इन मंत्रों का सार जता दिया है, जिस के अनुसार प्रत्येक आर्य बन्धु जानता है कि अग्नि इन्द्र वरुण सोम विष्णु और बृहस्पति शब्द ईश्वर बोधक हैं और यह ६ मंत्र ईश्वर की सर्व व्यापकता का उत्तम उपदेश दे रहे हैं। अग्नि इन्द्र आदि निःसंदेह ईश्वर के नाम हैं यह स्वयं अनेक वेद मंत्र बतला रहे हैं और इस के अतिरिक्त निरुक्त आदि आर्ष ग्रन्थों तथा अष्टाध्यायी महाभाष्यादि आर्ष व्याकरण से भी सिद्ध होते हैं। महर्षि दयानन्दजीने भारतीय आर्य प्रजा का बडा उपकार संक्षिप्त तथा सार गर्भित अर्थों द्वारा किया कारण कि साधारण लोग उक्त शब्दों के पंच भौतिक तथा कल्पित देवताओं के अर्थ लेते हुए उन के आगे हाथ जोड देने से ही अपना कल्याण समझ रहे थे।

सब जानते हैं कि महर्षि दयानन्दजीने अपने वेदभाष्य में निरुक्त के त्रिविध नियम को पालन कर दिखाया है, जिसका भाव यह है कि वेद मंत्रों के अर्थ आध्यात्मिक, आधिदैविक (वैज्ञानिक) और आधिभौतिक (सामाजिक) होते हैं। निरुक्त तथा महार्षि दयानन्द कृत वेद भाष्य ने हम को प्रेरणाकी किहम इन मंत्रों के वैज्ञानिक अर्थ करें। जिस दिनसे संस्कारविधि की व्याख्या **संस्कार चन्द्रिका** करनी हमने आरंभ कीथी उस दिन से ही यह मंत्र हमारे मनन का विषय बन गए थे। तीन वर्ष हुए कि **श्रीयुत डाक्टर कल्याणदासजी देसाई** बी. ए. एल एम एण्ड एस मंत्री आर्य विद्यासभा मुंबई ने हम को आर्ष सिद्धान्तों पर दो मास तक गुरुकुल बंबई के महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों में भाषण देनेका सुअवसर दिया। इस काल में हमने मनसा परिक्रमा के इन छ मंत्रों पर भी भाषण दिये।

ब्रह्मचारियोंने हमें कहा कि यह छ व्याख्यान यदि पुस्तकाकार हो जांए तो नाना प्रकार के वैज्ञानिक तत्वों को जानने का अवसर सब को मिल सकेगा। इसी समय हमने उक्त गुरुकुल के आचार्य तथा व्याकरणशास्त्र निष्णात संस्कृत के मुख्याध्यापक श्री पण्डित **मयाशंकरजी शर्मा शास्त्री** को अपने निबन्ध सुनाए और उन्होंने बडी योग्यता से व्याकरण शास्त्र के अनेक प्रमाण हम को दिये जिस के लिए हम उन के सदैव ऋणि रहेंगे।

इस के अतिरिक्त निम्नलिखित उन महानुभावों की सूची लिखते हैं जिन्होंने विचार, पत्र व अनुमति द्वारा हमें कृतज्ञ किया:—

(१) महात्मा श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी सरस्वती।

(२) कवि श्री पंडित महाराणीशंकरजी शर्म्मा आचार्य कन्या गुरुकुल बडोदा।

(३) निरुक्तरत्न पं. जगन्नाथजी अमृतसर।

(४) श्री. पंडित भीमसेनजी शर्म्मा महाविद्यालय ज्वालापुर

(५) श्री पं. भगवद्दत्तजी बी. ए. अन्वेषक (रिसर्चस्कालर)।

(६) श्री. बा. जगनलालजी गुप्त मुख्तार बुलन्दशहर

प्रश्न हो सकता है कि महर्षि दयानन्दने ब्रह्मयज्ञ के अन्दर जब मनसापरिक्रमा के मंत्रों का उल्लेख किया तो इन के आध्यात्मिक अर्थ जो विशेष कर ईश्वर संबंधी हों उनका स्वाध्याय करना ठीक होगा। संध्या के समय आधिदैवक वा वैज्ञानिक अर्थों की क्या आवश्यकता है?

इस के उतर में हम कहेंगे कि ब्रह्मयज्ञ के अर्थ मनुस्मृति तथा गृह्य सूत्रों में वेदाध्ययन अर्थात् स्वाध्याय तथा प्रवचन वा पढने पढ़ाने के लिये हैं। मनु० अ० ३ श्लो. ७० में "अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः" इन शब्दों से ब्रह्मयज्ञ के अर्थ पढाना वा विद्यादान के हैं। मनु. अ. ४. श्लो. २१ में "ऋषियज्ञं ...चसर्वदा-" का लेख है। यहां ऋषियज्ञं के अर्थ पढना

और पढाना दोनों हैं और ब्रह्मयज्ञ का पर्यायवाची यह है। अतः महर्षि मनु अनुसार ब्रह्मयज्ञ के अर्थ **पढना** और **पढाना** दोनों सिद्ध हुए। इन दोनों अर्थ करने में महर्षि मनुने ब्रह्म शब्द के जो वेद वा विद्या अर्थ हैं वही लिये हैं। इस ब्रह्म शब्द के दूसरे अर्थ ईश्वर के सब जानते ही हैं। महर्षि दयानन्दने अपनी पंच महायज्ञ विधि पुस्तक अन्तर्गत ब्रह्मयज्ञ में व्यवहार द्वारा तीनों अर्थ ब्रह्मयज्ञ के लिये हैं। कारण कि गायत्री जप वा संध्योपासना यह तो ईश्वर संबंधी यज्ञ है और आचमन, प्राणायाम आदि मंत्र स्वाध्याय तथा प्रवचन निमित्त हैं। अतः स्वाध्याय विद्यादान तथा उपासना अर्थों का जो महर्षि दयानन्दने **ब्रह्मयज्ञ** शब्द में समावेश किया है वह सब प्रकार से युक्त है।

महर्षि दयानन्दजी भली प्रकार मनुआदि ऋषियों से सह-मत थे और उस अवस्था में ब्रह्मयज्ञ में वह संध्या वा ईश्वरो-पासना का समावेश नहीं कर सकते थे। उन्होंने देखा कि ब्रह्म-यज्ञ शब्द के दूसरे अर्थ ब्रह्म संबंधी यज्ञ के जब हो सकते हैं तो उन्होंने ब्रह्मयज्ञ से ईश्वर का जप वा संध्या वा ईश्वरोपासना लिये, और इस दशा में केवल **गायत्रीमंत्र** ही उन को लिखना चाहिये था, पर उन्होंने अपने लेख द्वारा अप्रत्यक्ष रीति से **संध्या और स्वाध्याय** दोनों का समावेश ब्रह्मयज्ञ में कर दिया। यूं तो चार वेद, चार उपवेद, छ वेदाङ्ग और छ उपाङ्ग आदि ग्रन्थों का प्रत्येक आर्य को स्वाध्याय करना चाहिए पर न्यून से

न्यून वह गायत्री जप के अतिरिक्त, आचमन, अंगस्पर्श, मार्जन, प्राणायाम, परिक्रमा, तथा उपस्थान के मंत्रों का स्वाध्याय तो कर सके इस लिये उक्त मंत्र भी लिख दिये। जिस प्रकार आचमन अंग स्पर्श मंत्र वैज्ञानिक हैं कारण कि पहले का विषय जलपान और दूसरे का व्यायाम है पर स्वाध्याय के अन्दर इन का समावेश करना शारीरिक उन्नति हेतु से ही हो सकता है। विदित रहे कि आचमन मंत्र के अर्थ ईश्वर परक जो पंचमहायज्ञ विधि में ऋषिने किये वह जहां आर्ष व्याकरण तथा निरुक्त के अनुकूल होनेसे संगत तथा उत्तम हैं वहां स्वदेशी आर्य प्रजा इस मंत्रको शनिग्रह का मंत्र समझ उस से मिथ्या भयकर रही थी। उक्त ईश्वर परक अर्थने उस भय को निकाल दिया। यह कितना बड़ा उपकार ऋषि का भारतीय जनता पर है। यह भी ऋषि को मालूम था कि इस के दूसरे अर्थ पदार्थ विज्ञान संबंधी हैं और वह पदार्थ **जल** है, इस लिये वह भूले नहीं और उन्होंने पंच महायज्ञ विधि पुस्तक में जहां यह मंत्र लिखा उस के ऊपर **आचमन मंत्र** यह शब्द लिख दिये। जैसे पंचमहायज्ञ विधिमें अप् के अर्थ व्यापक ईश्वरके सिद्ध किये हैं तो सिद्ध हो गया कि ऋषि ब्रह्मयज्ञ के अन्दर केवल आध्यात्मिक विषयही नहीं ले रहे किन्तु दोनों। यजुर्वेद अ. ३६ मं. १२ में शन्नो देवी इ. मंत्र का भाष्य इस प्रकार किया है। जिससे आपः शब्द के अर्थ जलपरक हैं।

(शम्) (नः)........(आपः) जलानि (भवन्तु)............

पदार्थः—(देवी) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हम को (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें।

ऋषिने उक्त वेदभाष्य में 'शन्नो देवी' मंत्र के अर्थ जलपरक वा वैज्ञानिक किये हैं। इस लिये मनसापरिक्रमा के मंत्रों के वैज्ञानिक अर्थ करने, हमारे ऋषि आशय तथा शैली के समर्थक सिद्ध हो गये।

कई वर्षों से यह प्रश्न रहा था कि हवन करने से वर्षा हो सकती है वा नहीं इस के लिये पश्चिमी विद्वानों की प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष साक्षी चाहिये। इस पुस्तक में आपको उक्त साक्षी मिलेगी जिस को पढकर आप कह सकेंगे कि हवन से वर्षा हो सकती है।

ईश्वर का स्मरण योगी लोग तो घंटों करते हैं। रोगी जन महीनों तक दुःख भंजक ईश्वर का नाम लेते हैं और मनुष्य दिन रातमें ईश्वर का नाम कितनी वार लेवे इस के नियम करने की जरूरत नहीं, पर आर्य्य ऋषियोंने वेद आदि सत्य शास्त्रों के आधार से ईश्वर स्मरण की जो आदर्श पद्धति एक स्वास्थ्य मनुष्य के लिये बनाई थी उस का नाम दोकाल संध्या है। इस दो काल संध्या के प्रमाणों से आर्य्य इतिहास भरा पडा है इस को

सब ही जानते हैं। इस पुस्तक में आप को पाताल देश के डाक्टर तथा योगी डेविस की अमूल्य साक्षी मिलेगी और उन्होंने दो काल संध्या बोधक जो चित्र अपने वैज्ञानिक ग्रन्थ में दिया है उस चित्र को आप इस में पाएंगें। महर्षि दयानन्द तथा महर्षि मनुने जो दो काल संध्या का विधान किया है उस तत्व की जय पश्चिमी संसार में हो गई।

इस पुस्तक में भूगोलविज्ञान, गतिविज्ञान, सूर्य्य स्वरूपविज्ञान, रश्मिविज्ञान, रयिविद्युत विज्ञान, अपरान्ह विज्ञान, ऋतुविज्ञान, चन्द्रविज्ञान, चन्द्रकला विज्ञान, अन्नविज्ञान, चुंबक आकर्षणविज्ञान, अशनिविज्ञान, भूआकर्षण तापविज्ञान, भूकंप विज्ञान, भूगर्भविज्ञान, भूप्रदेशविज्ञान प्राणी विज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, वायुविज्ञान, मेघविज्ञान तथा वर्षाविज्ञान का वर्णन केवल इन ६ मंत्रों में तथा इन के अतिरिक्त उन की पुष्टि में जो अनेक वेदमंत्र वा संस्कृत साहित्य के प्रमाण दिए गए हैं उनमें आप को मिलेगा। यही नहीं परंच नाना प्रकार के वैदिकविज्ञान के तत्वों की पश्चिमी नाना प्रकार के सायंस सिद्ध तत्वों के साथ तुलना करते हुए वैदिक तत्वों की सत्यता और महत्व दर्शाया गया है।

मनसा परिक्रमा मंत्रों के तीन भाग हैं। प्रथम वह जो दिग्-विज्ञान प्रद, दिग् अन्तर्गत दैवी पदार्थों वा शक्तियों के

गुणों का बोधन करा रहा है। दूसरा वह जो इन दैवी पदार्थों के प्रति नमन् की शिक्षा दे रहा है। नमन शब्द के अर्थ ऋषि दयानन्द भाष्य में अतीव उत्तम और युक्तियुक्त पाए जाते हैं। इस पुस्तक में हमने उन को उद्धृत कर उस के अनुसार ही मंत्र के इस भाग के अर्थ किये हैं।

युरोप के तत्ववेत्ता कह रहे हैं कि अभ्युदय के लिए जरूरी है कि मनुष्य का लक्ष्य सृष्टि के पदार्थों के गुणकर्म के **अनुसार चलना** ही हो अर्थात् सृष्टि के अनुकूल चलो Follow nature उन्नति प्रद यह महान् सूत्र वह रातदिन जप रहे हैं। यही महान् तत्व 'तेभ्यो नमो '....इन वैदिक शब्दों में इस उत्तमता से विद्यमान है कि जिस का वर्णन हो नहीं सकता।

मंत्र के तीसरे भाग में दो भारी तत्व दर्शाये गए हैं एक तो यह कि सृष्टि के नियम अटल अखंड और रुद्ररूप हैं। युरोप के वैज्ञानिकोंने कहा है कि "The Laws of Nature are immutable and in exorable" अर्थात् सृष्टि के नियम अखंड और दंडदाता (रुद्ररूप) हैं।

मंत्र में यह महान्तत्व दाढ के सच्चे दृष्टान्त से दिखाया गया है जिस का स्वभाव ही पीस डालना है। जो मनुष्य चाहता है कि वह सृष्टि नियमों के कोप से बचे उस को इन के गुण कर्मानुसार चलना ही होगा। यदि हम युक्ति से आग से

काम लें तो हम भोजन बना सकते हैं यदि अज्ञान वश आग को हाथ से पकडना चाहें तो यह हमारा हाथ जला देगी उस समय यह अटल रुद्र शक्ति सिद्ध होगी। इसी भाग में दूसरा तत्व यह है कि जो दुष्ट जन सृष्टि नियमों के गुणों के अनुकुल चलनेवाले अर्थात् धर्मात्मा, उन्नतिशील (आर्य) सज्जनों का द्वेष करता हैं उस दुष्टजन को सज्जन जन समाज, रुद्ररूपी सृष्टिनियमों की दाढ में छोड दें अर्थात् उस को स्वयं क्षमा करें। यह सामाजिक क्षमा की नीति क्या है? बलवान समाज का निर्बल समाज के प्रति सद्व्यवहार वा धर्मात्मा समाज का एक दुष्ट व्यक्ति वा अल्पसंख्या के प्रति क्षमा का भाव।

क्षमा शब्द 'क्षम' धातु से बना है, जिस के अर्थ **सहन करने** के हैं। हमारे नीतिकारोंने कहा है कि क्षमा बलवान्ही कर सकता है और बातभी सची है कारण कि हाथी बलवान् होने पर ग्राम के कुत्तों को जब कि वह उस को भोंक रहे हैं क्षमा की दृष्टिसे देखता है। वह चाहे तो अपने महान बल से कुत्तों को कुचल दे पर वह क्षमा करता है। इस लिये वेद मंत्रने बतलाया कि जो सृष्टिनियमों के अनुकुल चलेंगे वह जरूर **बलवान्** होंगे उनकोही क्षमाशील होना चाहिये।

जनश्रुति है कि निर्बल मनुष्य को क्रोध बहुत आता है और जो शरीर तथा मन से बलवान् है वही क्षमाशील बनकर क्रोध

से बच सकता है। युरोप का सभ्य संसार इस समय Toleration क्षमा शीलता की जरूरत **मानवी उन्नति** के लिए अनुभव कर चुका है। उस क्षमा का स्वरूप किस उत्तमता से वैदिक शब्दों में मिल रहा है, इस को विशेष वर्णन करने की भूमिका में आवश्यकता नहीं समझते।

इन मंत्रों का निर्दिष्ट **दिग्–विज्ञान**, विचित्र, महान्, नैसर्गिक, और सर्व देशी **भूगोलविज्ञान** के रूप में मिलेगा। (१) विचित्र इस लिये कि युरोप के पंडितों के भूगोल किसी खंड विशेष की चार सीमा के ही दर्शक होते हैं। यह मंत्र छ सीमा किसी खंड विशेष की वर्णन नहीं कर रहे हैं। (२) महान् इस लिये कि उन की सीमाओं को चल कर मनुष्य उलंघन कर सकते हैं। यह वह सीमा हैं जिन का उल्लंधन मनुष्य चल कर कभी नहीं कर सकता, और फिर यह महान् भूलोक का वर्णन करते हैं। (३) नैसर्गिक इस लिये कि इन में किसी मानवी राज्य वा राजधानी का वर्णन नहीं। यहां जो भी अधिपति, रक्षक आदि हैं वह दैवी पदार्थ तथा दैवी नैसर्गिक वा कुदरती हैं।

(४) सर्व देशी इस लिये कि प्रत्येक मनुष्य इस के वर्णन से कह सकता है कि मेरे घर, ग्राम, देश खंड द्वीप महाद्वीप की यही सीमा हैं।

अन्त में प्रत्येक स्वाध्याय प्रेमी आर्य बन्धु तथा देवी को हम यह बतलाना जरूरी समझते हैं कि युरोप के अनेक विद्वान् जो

वेदों में अनेक प्रकार के विज्ञान नहीं मानते वह तथा उन जैसे अनेक भारतीय सज्जन इस पुस्तक को यदि आदि से अंततक पढकर जिज्ञासु होनेपर अपने विचार परिवर्तन कर सकेंगें तो हम समझेंगें कि हमारा अनेक वर्षों का श्रम निष्फल नहीं गया।

यह पुस्तक अभी जल्दी न छप सकती यदि **महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी** का शुभ अवसर सिर पर न आ जाता। हम शताब्दी के उपलक्ष्य में यह पुस्तक रूपी तुच्छ भेंट उस महान् योगी तपोधन महर्षि दयानन्दजी के शुभ नाम पर आदरपूर्वक अर्पण करते हैं :

बडोदा
वसंतपंचमी १९८१

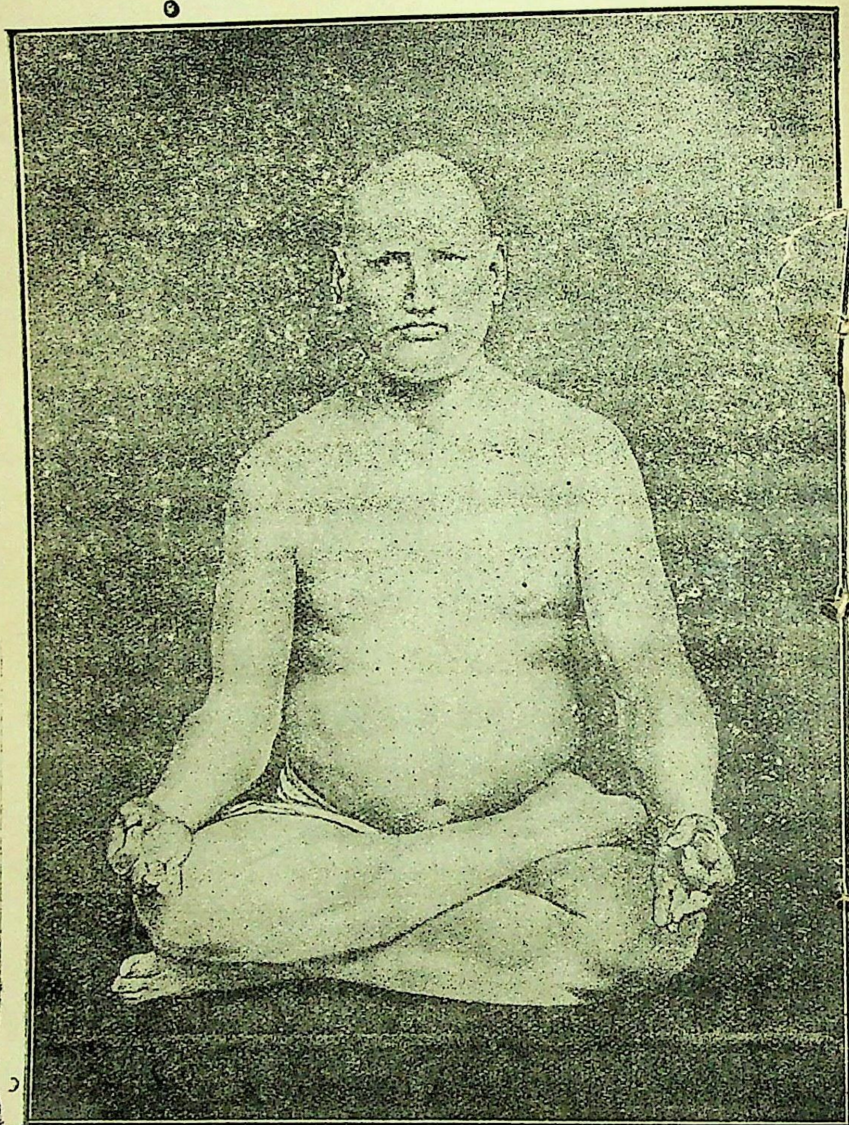
आत्माराम
अमृतसरी

राज्यरत्न आत्मारामजी रचित अन्य ग्रंथ

१	संस्कार चन्द्रिका	४)
२	सृष्टिविज्ञान	२)
३	वैदिक विवाहादर्श	१॥)
४	तुलनात्मक धर्म विचार	१)
५	ब्रह्मयज्ञ	।।।)
६	शरीरविज्ञान	।≡)
७	गीतासार	।=)
८	ऋषि पूजा की विधि	=)
९	मजहबे इस्लाम पर एक नजर	०)
१०	सामान्य धर्म	०)
११	आत्मस्थान विज्ञान	-)

प्रकाशक—

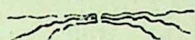
जयदेव ब्रदर्स, बडोदा।



महर्षि दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

दिक्-विज्ञान



प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्योनमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु । योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥

इस समय हरिवर्ष तथा पाताल निवासी सर्व पदार्थविज्ञानी पुरुषों का सिद्धान्त है कि सूर्य्य, चन्द्र, तारा, विद्युत्, आग, जुगनू–कीट तथा सर्व प्रकार के दीपकों द्वारा जो प्रकाश वा ज्योति भूलोक में है, उस की आदि मूल सूर्य्य रश्मिएं ही हैं और यह सप्तरंगी रश्मिएं प्रकाश और दाह वा उष्णता को सदैव धारण किये हुए रहती हैं । उक्त विज्ञानी यह भी लिखते तथा सिद्धान्त रूप से प्रचार करते हैं कि सर्व प्रकार की रश्मियों वा प्रकाश का यथार्थ स्वरूप Kinetic Energy (काईनेटिक एनरजी) अथवा **गतिप्रद शक्ति** ही है । उन के प्रयोगों ने उन को निश्चय करा दिया कि न केवल रश्मि मात्र का उक्त स्वरूप ही है किन्तु सूर्य्य आदि सब ही प्रकाशमान उक्त स्वरूपधारी हैं । भारत भूषण महर्षि यास्काचार्य कृत **निरुक्त** में जो अति प्राचीन वैदिक शब्दकोष है, इसी तत्त्व को दर्शाया

गया है । उन्होंने अग्नि शब्द का मूल रूप दिखाते हुए लिखा है कि अग्नि शब्द **अञ्चु** धातु से बना है जिसके अर्थ **'गति'** और 'पूजा' के हैं । अतः प्रसंगवशात् जहां अग्नि शब्द के भौतिक अर्थ करने होंगे वहां इस के आदि वा मूल अर्थ निस्संदेह **गति** के ही लिये जांयगे ।

प्राचीदिगग्नि यह वेद मंत्र प्राची दिशा से संबंध रखने वाले सूर्य्य का बोधक है । हम इस मंत्र के भौतिक अर्थ करेंगे । इस लिये यहां अग्नि शब्द निरुक्तानुसार गति वाचक ही है । अब हमें **गतिप्रद शक्ति** वा "काइनेटिक एनरजी" पर कुछ थोडा सा विचार करना चाहिये । वास्तव में गति वा शक्ति एक ही तत्त्व के बोधक दो नाम हैं । जो पदार्थ गतिमय वा क्रियावान् है वही शक्तिवान् है । जब एक मनुष्य कहता है कि मैं यह काम कर सकता हूं तो इस का भाव यही होता है कि उस में गति क्रिया वा शक्ति है । गति क्रिया वा शक्ति का प्रगट करना ही काम वा कर्म्म का करना है । यदि हम कहें कि सूर्य्य **गतिस्वरूप** है तो इस का अर्थ यही होगा कि सूर्य्य गति वा शक्तिमय है और जिसके स्वरूप में जो गुण वा कर्म्म होंगे उस को वही दूसरों को देता है । सूर्य्य गति वा शक्ति स्वरूप है, इस सत्य कथन का भाव सदैव यही होगा कि वह गति वा शक्ति दाता है और वैदिक संस्कृत का एक शब्द **अग्नि** उक्त सब भावार्थों को बोधन कराने के लिये पर्याप्त है, उस दशा में

जब कि हम को उस की निरुक्ति वा मूल अर्थ का ध्यान रहे। सूर्य्य विज्ञान प्राप्त करने की क्या ही उत्तम विधि वेद मंत्र से प्रगट हो रही है। विद्यार्थी अज्ञात जंगल में खडा होकर देख रहा है कि किधर की धरतलसन्धि में लाल पीले रंग का प्रकाश हो रहा है। यह विचित्र प्रकाश विद्यार्थी की दृष्टि को अपनी तरफ खैंच रहा है और ऋषि दयानन्द ने सत्य लिखा कि 'जिधर मुख हो सके वह प्राची दिशा* तथा जिधर से सूर्य्य उदय होता है।' नैसर्गिक रीति से जिज्ञासु का मुख सूर्योदय की तरफ ही होगा। सर्व भूगोल शास्त्री दिक् बोध का आरंभ पूर्व से ही करते हैं और जिधर से सूर्य्य निकले वही पूर्व है, यह उनका अटल सिद्धान्त है। मंत्र में प्रथम यही अटल तत्त्व दर्शाया गया है। फिर वह सूर्य्य गति, क्रिया वा शक्ति का भंडार है यह गूढ सिद्धान्त अग्नि शब्द द्वारा उस के मन पर अंकित कर दिया गया।

दूसरी बडी बात जो हरिवर्ष (युरोप) तथा पाताल (अमेरिका) के सर्व पदार्थविज्ञानी सूर्य्य संबंधी दर्शा रहे, वह यह है कि सूर्य्य में कृष्ण कंद्राएं हैं जिन को वह Sun Spots (सन स्पाटस) कहते हैं।

पाश्चात्य विज्ञानी **पारदर्शक मणि** (स्फटिक) के आधार पर

---

* यत्रस्वस्यमुखंसाप्राचीदिक् । तथा यस्यां सूर्य्य उदेति सापि प्राची दिगस्ति। (पंचमहायज्ञविधि)

जिसको वह Spectrum (स्पेक्ट्रम) प्रयोग कहते हैं इस निश्चय पर पहुंचे हैं कि सूर्य्य की कृष्ण कंद्राएं उस के अनेक पार्थिव तथा वायव्य द्रव्यों का बोधन करा रहीं हैं। दृष्टान्त में कहते हैं कि देखो नमक को जब अग्नि की ज्वाला में डाला जाय तो उस समय ज्वाला का रंग कुछ विलक्षण होता है और उक्त विलक्षण ज्वाला को देखकर हम अनुमान कर सकते हैं कि अमुक स्थल पर नमक होगा। इसी प्रकार पारदर्शक मणि के उत्तम तथा तर्कयुक्त प्रयोगों से वह यह कह रहे हैं कि सूर्य्य, चन्द्र, तारा तथा पृथिवी की बनावट में समान द्रव्य ही हैं। यह बात उनके लिये बहुत ही विचित्र है पर आर्य्य संतान के लिये इतनी विचित्र नहीं कारण कि यहां भूलोक के समान सूर्य्य लोकका वर्णन धर्म ग्रन्थोंमें है और लोक परलोक की चर्चा प्रत्येक आर्य्य सज्जन का रोचक विषय है।

डाक्टर सी. ए. यंग महोदय पी.एच.डी. एल.एल.डी. की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'दी सन' [सूर्य्य] के एक लेख का सार यह है कि दूरवीष्णी के विना भी सूर्य्य की कृष्ण कंद्राएं प्राचीन काल में चर्मचक्षु से पुराने ज्योतिषी देखते रहे और **चीन देश** के इतिहास में यह वृत्तान्त बहुत मिलते हैं।

चीन देश के इतिहास से अति प्राचीन भारतीय आर्य्य-इतिहास है और **रामायण** ग्रन्थ में सूर्य्य की **नीलवर्णी** कंद्राओं का वर्णन एक श्लोक में उत्तमता से मिलता है। बृहत्संहिता

के पृष्ट ११ तथा १३, अध्याय ३, श्लोक ७ तथा १९ में 'तामस' और 'कृष्ण' शब्दोंसे यही बोध दिया है। अब इतिहासने निर्णय कर दिया कि सूर्य्य संबंधी उक्त गूढ़ तत्व चीनी तथा भारतीय आर्य्यों को मालूम था। अब हम वेद में से जो सब से आदि धर्म्म तथा विज्ञान ग्रन्थ है उक्त तत्व की चर्चा दर्शाएंगे।

+' Even before the days of telescope there are numerous records of dark spots seen by the naked eye upon the disk of the Sun, especially in the annals of the Chinese."

"To him we can trace directly nearly all the energy involved in all phenomena mechanical, chemical or vital. Cut off his rays for even a single month and the earth would die, all life upon its surface would cease.

The two doctrines of the correlation of forces and the conservation of energy having once been distinctly apprehended and formulated it is easy to trace their solar origin...to show for instance how the power of water falls is only a transformation of the Sun's heat and the same thing is true of the power of steam, of electricity and even of animals."

+ The Sun. By C. A. Young Ph.D., LL.D., London 1910.

"Whenever work is done, it is by the undoing of some previous work. When a clock moves, it is the unwinding of a spring or the falling of a weight which keeps it going and some one must have wound it up to begin with." "The body, regarded as a mechanism is only a food engine in which the stomach and lungs stand for the furnace and boiler of a steam engine, the nervous system for the valve gear and the muscles for the cylinder. How the personality within, which wills and acts, is put into relation, with this valve gear so as to determine the movements of the body it resides in, is the inscrutable mystery of life.

1. "The Central portion is probably for the most part a mass of intensely heated gases.

2. The photosphere is a shell of luminous clouds formed by cooling and condensation of the condensible vapours at the surface, where exposed to the cold of outer space.

3. The chromosphere is composed of uncondensible gases (hydrogen) left behind by the formation of the photospheric clouds and bearing some thing the same relation to them that the oxygen and nitrogen of our own atmosphere do to our own clouds.

4. The corona has as yet received no explanation.

"One of the largest sun-spot; seven times the

size of the Earth, was observed October 14, 1883, visible to the naked eye."

"There is no doubt as to the connection between the sunspots and terrestrial magnetism."

"The visible surface of the sun has been named photosphere and by watching the spots which occasionally appear upon it we have ascertained that it revolves upon its axis once in about 25¼ days."

"The spectroscope informs us that in great part at least the elements, which exist in the lower regions of the Solar atmosphere in the state of vapour, are metals. We are familiar with upon the earth, while it shows the chromosphere and prominences to consist mainly of hydrogen and helium."

"All the waves of Solar radiation are carriers of energy and when intercepted do work, producing heat or vision or chemical action according to circumstances."

"Usually with a telescope the surface appears similarly uniform, except that there is a slight darkening at the edge and that once in a while black spots are seen upon the disk."

"(अर्थ):-चीनियों के इतिहास में विशेष कर बहुत से उल्लेख मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि दूरवीक्षणी के व्यवहार से पूर्व

काल में भी सूर्य के नीले दाग केवल चर्मचक्षुसे सूर्य मंडलाकार में देखे गए थे।

सूर्य ही प्रत्यक्ष रूपसे उन सर्व यांत्रिक रसायनिक अथवा जीवन संबंधी दृश्यों में जो शक्ति है उसका मूल है। उसकी रश्मियों को एक ही मास के लिए दूर कर दीजिये तब पृथिवी श्मशान हो जाएगी इस के सर्व प्राणी मर जाएंगे।

शक्तियों का सहयोग और बलका संरक्षण इन दो सिद्धान्तों को यदि पूर्ण रूपसे समझ सूत्रवत् बना लिये जाएं तो उनका मूल सूर्य में ढूंडना सहज कार्य हो जाएगा।

दृष्टान्त की रीतिसे देखिये कि किस प्रकार जल की शक्ति जो गिरती है वह सूर्य की उष्णता का एक रूपांतर है और यही तत्व वाष्प विद्युत् और प्राणियों संबंधी समझिए।

जब कभी कोई क्रिया की जाती है तो यह पहले किसी स्थित क्रिया का प्रगटीकरण है। जब एक बडी घडी गति कर रही है तो इसका तत्व यह है कि इसकी कमानी खुलरही है अथवा उस लंगर का गिरना है जो इस को गतिमान रखता है और जरूरी है कि किसी मनुष्यने इसको आरंभ में लपेटा होगा।

मानवी शरीर को एक कला माना जाय तो यह केवल भोजन यंत्र है जिसमें आमाशय और फेफड़े वाष्पीय यंत्र की भट्ठी और पानी उबालने वाली जगहके समान हैं, और मज्जातंतु

यांत्रिक ढकने की न्याईं और पेट्ठ वाष्प वाहिनी नालिका के समान हैं । किस प्रकार अंतरात्मा का जो इच्छा और कर्म करता है इस यांत्रिक ढक्कन से संबंध हो गया ताकि वह शरीरकी क्रियाओंको जिसमें वह रहता है अवधारण करे यह बात जीवनका अगम्य रहस्य है ।

१ अनुमान किया जा सकता है कि सूर्य्य के मध्य भाग में विशेष कर प्रचण्ड अग्निमय वायव्य पदार्थ होंगें ।

२ प्रकाशमय मंडल उन ज्योतिमय बादलों का ढक्कन है जो कि बाहरके अन्तरिक्ष से शीत पाने पर ठण्डे हो कर संगठित होते हैं ।

३ लाल मंडल उन (आर्द्रजनक) हाइड्रोजनादि न संगठित होने वाले वायव्य द्रव्यों का बना हुआ है जो द्रव्य के प्रकाश मंडल के बादलों के बनने पर अवशेष रह जाते हैं और इन का संबंध उनसे वही होता है जो हमारे वायु मंडल के प्राण तथा नत्रजन वायुका पृथिवी के बादलों से होता है

४ तेजोमय मुकुट के विषय में अबतक कोई विशेष बात स्पष्ट नहीं हुई ।

१४ अक्टूबर सन १८८३ को सबसे बडी सूर्य कृष्ण कन्दरा जिसका आकार पृथिवी से ७ गुनाथा चर्मचक्षु से दृष्टि गत हुई थी ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूर्य कन्दराओं का भूलोकस्थ चुम्बक शक्ति पर भारी प्रभाव पडता है।

सूर्य के दृष्टिगत स्थल का नाम प्रकाशमय मण्डल है और कृष्ण कन्दराओं के अन्वेषण करने से जो कभी इस पर प्रगट हो जाती हैं हमने पता लगाया है कि यह अपनी धुरी पर लगभग २५३/४ दिनों में घूमता है।

पारदर्शक स्फटिक से हमें पता लगता है कि कमसे कम वह तत्व जो निचले सौरवायु मंडल के निचले खंडों में वाष्पकी दशा में हैं वह धातें हैं जिन से हम भूमि पर परिचित हैं, जब यह दर्शाती हैं कि लालमंडल और अर्ध भाग आर्द्रजनक (हाइ-ड्रोजन) और (हीलियम) पारदर्शक वायव्य पदार्थ से भरपूर हैं।

सूर्यविकाश की सब तरंगें शक्ति वा गतिवाहक हैं और जब रोकी जांय तो ताप उत्पन्न करने, दिखाने, अथवा रसायनिक परिवर्तन दशानुसार करती हैं।

प्रायः दूरबीन से देखने पर सूर्य की तलेटी समान प्रतीत होती है सिवाय इसके किनारे पर थोडासा अन्धकार है और एक क्षण में ही कृष्ण कन्दराएं मंडल पर प्रतीत होने लगती हैं।"

संस्कृत साहित्य में Sunspots नील वर्ण का वर्णन कई स्थानों पर मिलता है जिनमें ज्योतिः शास्त्र और काव्य के ग्रन्थ मुख्य हैं। पहिले रामायण लीजिएः—

(१) युद्ध काण्ड सर्ग २३ श्लोक ९

ह्रस्वो रूक्षोऽ प्रशस्तश्च परिवेशस्तु लोहितः ।
आदित्ये विमले नीलं लक्ष्य लक्ष्मणं दृश्यते ॥

(अर्थ) सूर्य का घेरा वा उसका विम्ब छोटा, रूखा, बुरा और लाल दीख पडता है। हे लक्ष्मण उस विमल सूर्य में नीले दाग को देखो। इसी का अर्थ मुरादाबाद निवासी पं. ज्वालाप्रसादजी रामायण में करते हुए लिखते हैं " निर्मल सूर्य मण्डल में नीले वर्ण के दाग दिखाई देते हैं। हे लक्ष्मण सूर्य के बाहरी भाग में छोटा शुष्क लाल घेरा बन गया है।" भाव दोनों श्लोकों का एक ही है। यह श्लोक निर्णय सागर की मूलरामायण सन् १९१५ के संस्करण में पृष्ट ७१० पर है।

दूसरा ग्रन्थ वराह संहिता वा वृहत्संहिता है। इसका लेखक वराह मिहिर प्रसिद्ध ज्योतिषी है। उसने उक्त संहिता में इन दागों का उल्लेख किया है और उसने यह वर्णन गर्ग, पाराशर, पुलस्त्यादि संहिताओं के आधारपर लिखा है। उसने इन दागों को 'तामस कीलक' नाम दिया है यथाः—

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टानामार्क मण्डनं कुरूते ।
तामसकीलक संज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्मिंशत् ।
वर्णस्थाना कारैस्तान्दृष्ट्वार्के फलं ब्रूयात् ।

(अर्थ) त्वष्टा नामक पदार्थ विना पर्व के सूर्य मण्डल को काला करता है। राहु के ३२ पुत्र हैं यह ग्रन्थ कर्त्ताका अलंकारिक

वर्णन समझना चाहिये। जो तामस कीलक हैं वे सूर्य में अलग अलग आकार और वर्ण के देख पडते हैं। वृहत्संहिता अ० ६ श्लोक १७।

इन दागों की अन्वेषणा युरोप में जबसे हुई तबसे ही इनका सम्बन्ध भूमिके चुंबक तथा विद्युत्मय उत्पातों से बताया गया है। जब ये अधिक संख्या में दीख पडते हैं तो अनावृष्टि, आदि होना युरोप के कई ज्योतिषी मानते हैं।

रामायण में जिस प्रकरण में उक्त श्लोक आया है वह भी ऐसाही प्रकरण है।

प्राचीदिक् बोधक इस मंत्रमें जो सूर्य विज्ञान से भर रहा है एक '**असिता**' शब्द आया है। इसके अर्थ सर्व शब्द कोशों में इस प्रकार हैं। (१) बंधन–रहित (२) कृष्ण (३) अशुक्ल इत्यादि। जब हम मंत्रके पदार्थ विज्ञान संबंधी अर्थ करना चाहें तो हमको उसके कृष्ण अथवा अशुक्ल अर्थ ही लेने होंगे। अतः असिता के अर्थ यहांपर कृष्ण स्वरूप हैं। ऋग् तथा यजुर्वेद के अनेक ऐसे मंत्र सूर्य्य विज्ञान संबंधी हैं जिनमें 'कृष्ण' शब्द आता है। सूर्य्य लोक में कृष्ण स्थल वा कंद्राएं हैं इसको वेदका यह '**असिता**' शब्द किस उत्तमता से प्रगट कर रहा है इस पर अधिक व्याख्यान की आवश्यकता नहीं। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकाके ग्रन्थ प्रमाण विषय में पृष्ट २९६पर ऋषि दयानंदने सित् और असित् शब्दों के अर्थ दर्शक निरुक्त का जो प्रमाण

दिया है वह हम यहां पर लिखते हैं। "अत्र प्रमाणम्। सितासित मिति वर्णनाम तत्प्रतिषेधो सितम्। निरु. अ. ९ खं. २ सितं शुक्र वर्णमसितं तस्य निषेधः। तयोः प्रकाशान्धकारयोः।"

इसका भाव यह है कि शुक्लवर्ण (रंग) का नाम सित् और उस के विरोधी रंगका नाम असित् है। अतः निरुक्त, ऋषिदयानंद भाष्य भूमिका तथा आपटे आदि सर्व संस्कृत कोशों के आधारसे यह सिद्ध हो गया कि वेद में आये हुये असिता शब्द के अर्थ अशुक्ल व कृष्ण वर्णी हैं।

हरिवर्ष के पण्डित सदा पाठ कराते हैं कि वह सूर्य्य सप्त रंगी रश्मियों का दाता है और वह रश्मिएं प्रकाश तथा दाह वा उष्णता को लिये हुए हैं। इनके ही प्रताप से जगत् को जीवन मिल रहा है, यह भारी परोपकारी हैं। उनका दृढ मत है कि प्रकाश की गति वा तरंगें दूसरी तरंगें उत्पन्न करती हैं इस लिये इनको गतिप्रद व गति–दाता स्वीकार करना पडता है।

मंत्रका शब्दार्थ निम्न प्रकार है:—(प्राची) पूर्व (**दिक्**) दिशाका (**अग्नि**) गति स्वरूप (**असितः**) कृष्ण रंग (**रक्षितः**) रक्षा करने वाला है (**आदित्या**) सूर्य किरणें (इषवः) बाण सदृश हैं (**तेभ्यो नमो**) उन सबके लिए उत्तम कर्म, (**अधिपतिभ्यो नम**) उस स्वामी के लिये उत्तम कर्म (**रक्षितृभ्यो नम**) रक्षक के लिए उत्तम कर्म (**इषुभ्यो नम**) और बाणों के लिए उत्तम कर्म हो (**एभ्यो अस्तु**)

इन सबके लिये उत्तम कर्म हो। (**योऽस्मान् द्वेष्टि**) जो हमसे द्वेष करता है (**यं वयं द्विष्मः**) जिससे हम द्वेष करते हैं (**तम्**) उसको (**वः**) आपके (**जम्भे**) जबडे में (**दध्मः**) रखते हैं।

हमने (**नमः**) शब्द के अर्थ जो उत्तम कर्म वा सत्कर्म किये हैं वह वास्तव में मंत्र के भाव को ठीक तौर पर प्रगट करते हैं और महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने यजुर्वेद भाष्य के अ. ३४ मंत्र १७ में यही अर्थ किये हैं। यथा "(नमः) सत्कर्मान्नवा" पदार्थः–(नमः) उत्तम कर्म वा अन्न को। आप्टे कृत ऐंग्लो संस्कृत कोष में असितः के अर्थ निम्न प्रकार हैं–(१) unbound, स्वतंत्र (२) नसितः, शुभ्रः Not white, black darkblue, अशुक्ल, काला, कृष्ण।

तेभ्योनमोः–पहिले उन सब को नमन फिर उन का व्योरेवार वर्णन करते हुए नमन का उल्लेख ताकीद को बतला रहा है। अग्नि बहुवचन में जो प्रयुक्त हुआ है, वह आदर के लिये, फिर रक्षितृ फिर इषु। 'एभ्यो' इदं का रूप है ताकीद के लिए है। निरुक्त १९२ में दिशा संबंधी यह लेख है। "दिशः कस्मात् दिशतेः आसदनादपि वा अभ्यशनात्।"

वेद मंत्र में सूर्य किरणों को बाणवत् कहा गया है। बाण दो प्रकार का कार्य करते हैं। धर्मात्माओं का रक्षण और दुष्टों का निवारण। इस अलंकार से दर्शाया गया है कि प्राची दिक् का

प्राण सूर्य किरणें किस प्रकार मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों को उपयोगी हैं।

(१) महर्षि दयानन्दजीने आदित्य शब्द का अर्थ आर्ष प्रमाणों द्वारा प्राण भी किये हैं। सब विद्वान् इस समय युरोपमें मान रहे हैं कि जीवनशक्ति का आधार सूर्य है। इसी जीवनशक्ति को संस्कृत में प्राण कहते हैं, सूर्य को प्राण इसी लिए कहा गया है कि वह जीवन वर्धक है।

(२) **आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे धेहि।** इस वेदमंत्र में दर्शाया गया है कि तेज वा सूर्य आयुवृद्धि का कारण है।

(३) मैडिकल सायन्स आफ टु डे* में सूर्य रश्मियों के महान् उपयोग संबंधी ग्रन्थकर्त्ता इस प्रकार लिखते हैं " Light especially the light of the sun has a truly wonderful effect on nearly all forms of germs. Almost without exception they are killed by the rays of the sun." अर्थात् प्रकाश का विशेष कर सूर्य के प्रकाश का सचमुच विचित्र प्रभाव लगभग सभी प्रकार के सूक्ष्म रोग जंतुओं पर पड़ता है। सब के सबही रोगजंतु सूर्य की रश्मियों से नाश को प्राप्त होते हैं।"

आज संसार में कितने भयंकर रोग बढ रहे हैं जिनका एक कारण रोगजंतु होते हैं, उनसे बचना प्रत्येक बुद्धिमानका काम है और बचने का उत्तम उपाय यही है कि हम सूर्य की किरणों

* Medical Science of Today. By Dr. Willmott Evans M. D.

को शरीर पर लिया करें। यही बात युरोप का उक्त भारी डाक्टर कह रहा है। यही बात स्वयं यजुर्वेद अ. १ मं. १२ में इस प्रकार दर्शाई गई है:—' पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ' अर्थात् विष दूर करने का हेतु सूर्य की किरणें हैं।*

(४) वेद में कहा है कि शीत की औषधि ताप वा सूर्य की गरमी है। शीतकाल में मनुष्य तथा पशु आदि सभी शीत निवारण के लिये सूर्य के ताप की शरण लेते हैं।

(५) सूर्य की किरणों को वेद में ' हरि ' कह कर दर्शाया गया है कि यह जल को शोषण करने वाली हैं। प्रतिदिन लोग अनुभव करते हैं कि गीले वस्त्र जब सूर्य की धूप में डाले जांए तब सूख जाते हैं।

(६) सूर्य वृष्टि कर्त्ता है। इन्द्र और वृत्र शब्दों द्वारा कैसे उत्तम अलंकारों से वेदों में यह बात सिद्ध की गई है कि सूर्य समुद्र से जलको ऊपर ले जाकर मेघ रूप में बनाता और फिर वर्षारूप में गिराता है।

(७) अनेक मंत्रों में कहा गया है कि सूर्य से हमारी खेतियें पकती हैं।

(८) सूर्य दिन ऋतु और वर्षा का कारण है जिससे हम नानाविध सुख भोगते हैं। इसके बोधक अनेक मंत्र हैं।

---

* देखो महर्षि दयानन्द कृत वेद भाष्य.

(९) सूर्य की किरणें सप्त रंगों को उत्पन्न करने से संसार में सुंदरता तथा नाना प्रकार के रूप निर्माण कर रहीं हैं। जिससे सब को अनेक लाभ होते हैं।

(१०) सूर्य का तेज तथा प्रकाश काष्ठ में गुप्त रूप से विद्यमान रहता है। इसी प्रकाश तथा ताप को प्रगट करने के लिए हम प्रतिदिन होम करते तथा भोजन बनाते हैं।

(११) नानाविध कलायंत्र सूर्य के इस दिये हुए ताप व अग्नि से चलते हैं।

(१२) दाह करने की कितनी भारी शक्ति सूर्य के तेज में है।

(१३) जठराग्नि अर्थात् पाचन शक्ति का यह दाता है।

(१४) सूर्यएकाकी चरति। इस वेद मंत्रानुसार सूर्य अपनी धुरी पर अपने आप फिरता है। युरोप के एक ज्योतिषि का कथन है कि सूर्य में जो काले दाग़ दृष्टि पडते हैं वह सब दाग़ उसमें पश्चिम की तरफ जाते हुए प्रतीत होते हैं और फिर उसी दिशामें गुम हो जाते हैं। फिर लगभग १२ दिन पीछे उस में पूर्व की तरफ दीखने लगते हैं और पच्चीसवें दिन उसी स्थल पर उस में फिर पश्चिम की तरफ प्रतीत होने लगते हैं, जिससे सिद्ध करते हैं कि सूर्य अपनी धुरी पर घूमता है और पच्चीस दिन में अपनी धुरी पर एक प्रदक्षिणा करता है।

आदित्य अथवा सूर्य के लाभ गिनाने के लिये पुस्तकें भरी जासकती हैं यहां केवल कुछ बातें इस लिए लिखी गई हैं कि पाठकों को सूर्य के महत्व का कुछ ज्ञान वा स्मरण हो सके।

पूर्व दिशाका अखंड बोधक सचमुच आदित्य है। आज युरोप के सर्व भूगोल विद्याविशारद अपने विद्यालयों में भूगोलान्तर्गत दिग् विज्ञान का शिक्षण देते हुए यही तो बतलाते हैं कि पूर्व दिशा वह है जिधर सूर्य उदय होता है। यही ज्ञान वेद की इस श्रुतिमें मौजूद है जो बतला रही है कि पूर्व दिशा से संबंध रखने वाली तीन शक्तिएं हैं।

प्रथम अग्नि अर्थात् गति, द्वितीय असित अर्थात् सूर्य्य का कृष्णभाग, तृतीय आदित्य अर्थात् सूर्य्य किरणें, जिसके उपरिलिखित यत्किंचित् चौदह प्रकार के गुण व कर्म गिनाये हैं। युरोप के बडे बडे पदार्थविज्ञानी जिस समय अग्नि, प्रकाश तथा सूर्य्य के उपकारों को अनुभव करते हैं उस समय उनको स्वीकार करना पडता है कि यह सृष्टि की महान् शक्तिएं हैं। डाक्टर निकलस एम. डी. का कथन है कि Follow Nature अर्थात् सृष्टि के नियमों के अनुकूल चलो। युरोप और अमेरिका में जो उन्नति इस समय हो रही है वह दर्शा रही है कि वहां के पदार्थविज्ञानी इन पदार्थों के गुणों को जान कर उनके अनुकूल चलने से नानाविध कलायंत्र रच रहे हैं। जो लोग कहते हैं कि Subdue Nature अर्थात् सृष्ट पदार्थों

को आधीन करो, वह वास्तव में वाक्यछल करते हैं। कारण कि आजतक जो गुण जिस पदार्थ का है उससे वह वही काम लेते हैं अपनी इच्छा से उसके गुण के विरुद्ध कोई काम नहीं ले सकते। दृष्टांत की रीति पर वह आग जला कर पानी का बाष्प (Steam) बनाते हैं पर बाष्प को पानी बनाने के लिए वह क्यों कभी आगसे काम नहीं लेते ? इस लिए इन गुणों को अखंड मानकर उनके वर्ताव करने से मनुष्य उन्नति कर रहा है। इंग्लैंड के राजा कैन्यूट ने अपने झूठे खुशामदियों को किस प्रकार फिटकारा था यह दिखा कर कि देखो समुद्र का पानी मेरी तरफ बढता हुआ आरहा है यदि मैं इसका राजा होउं तो मेरे कहने से पीछे क्यों नहीं हट जाता ? बड़े बड़े कवि जिस समय इन दैवी शक्तियों का वर्णन करते हैं वह इनके महत्व को अनुभव कराने के लिए उत्तम भाव प्रकाशित करते हैं।

उक्त वेद मंत्र के दूसरे भाग में जो यह कहा गया है कि हमारा इनके लिए नमन भाव हो सच पूछो तो Follow Nature का भावार्थ नहीं तो क्या है ? इसके अतिरिक्त ऋषि दयानन्दजी ने जो वेद भाष्य में उत्तम कर्म्म अर्थ किये हैं उनका सार यह है कि हम दैवी शक्तियों वा पदार्थों के गुणों को जान उनसे लाभ ले सकें यही उनका सत्कार नमन अथवा हमारा उनके प्रति उत्तम कर्म्म है। सत्कार शब्द सत्कर्म वा शुभकर्म्म का द्योतक है। इस लिये यदि सत्कार की जगह उक्त भाष्य में उत्तम कर्म शब्द का

प्रयोग हुआ है तो वह सर्वथा उचितही है। भाव दोनों का एक है शव्द शैली भिन्न भिन्न है।

हरिवर्ष में कलायंत्रों की भारी उन्नति होने पर भी वहां के समाज में सुखशान्ति नहीं इस का एक कारण यह है कि इस के साथ साथ वह लोग आत्मिक उन्नति नहीं करते। मंत्र के अन्तिम भाग में आत्मा संबंधी उन्नति का नियम यह दर्शाया है कि मनुष्य वैरी से वैर लेने के भाव को छोड कर उस वैर भाव को सहन करने का यत्न करे। क्षमाशील बने। क्षम् धातु सहन अर्थ में है। सहनशीलता का दूसरा नामही क्षमा है। जो बड़ा बलवान् होता है वही क्षमा गुण वा कर्म्म धारण कर सकता है। देखो हाथी जो महाबली है, जब नगर में जाता है तो निर्बल कुत्ते उस को भौंकते हैं, पर हाथी एक भी कुत्ते को पगसे कुचलकर नष्ट नहीं करता। उस को अपने महान् बल का ज्ञान है, पर वह उस को वैरी के नाश करने के लिये काम में नहीं लाता। इसी लिये तो हमारे उत्तम नीतिशास्त्र कहते हैं कि "क्षमा वीरस्य भूषणम्" अर्थात् क्षमा वीर का भूषण है। वेद मंत्र का यही आदेश है कि प्रत्येक देशस्थ श्रेष्ठ पुरुषों के समाज में इतना बल हो कि वह अपने समाज के वैरीजन वा जनों को महान् बली होने के कारण क्षमा कर सकें।

दुष्ट जन संसार में सज्जन जन पर विना कारण प्रथम द्वेष दर्शाता है। अंग्रेजी भाषा में इस को Offence आक्रमण कहते

हैं। मंत्र में भी दर्शाया गया है कि आदित्य की किरणें बाणवत् हैं। इस का भाव यह हुआ कि ईश्वररचित पदार्थ जहां सज्जनों की रक्षा के साधन हो सकते वहां दुष्टों को सुधारने व ताड़ने का भी काम देते हैं। दया और न्याय दोनों काम ईश्वर की सृष्टि में उस के रचित पदार्थ कर रहे हैं। यह बात बाण के अलंकार से प्रगट की गई है। हमारे क्षमा करने पर भी द्वेषी मनुष्य अवश्य दंड व दुःख पायेगा और कहीं भी भाग कर नहीं जा सकता और न छिप कर बच सकता है। जम्भ शब्द का प्रयोग इसी भाव को दिखाने के लिये है कि द्वेषी मनुष्य ईश्वरीय नियमों के ऐसा आधीन है मानों कि जबडे में रखा हुआ भोजन ग्रास। ईश्वरीय नियम अखंड अटल हैं यह बात जम्भे शब्द ने दर्शा दी। पश्चिमी देशों में जड उपासना, डारविन मत वा विकासवाद आदि नास्तिक तथा अन्यायवाद * के भयंकर प्रचार से वहां की प्रजा इस समय यह तत्व भूल गई है कि प्रबल मनुष्य वा समाज दूसरों को कष्ट न दे। लोकैषणा, पुत्रैषणा (परिवार प्रेम) तथा वित्तैषणा (धन लोभ) के कारण मनुष्य एक दूसरे से त्रिविध द्वेष करते हैं। प्रथम मनसे, फिर वाणी तथा लेखसे फिर शस्त्र प्रहार द्वारा। शान्ति (Harmony) वा समता, द्वेष के कारण देश वा समाज से भाग जाती है। वैर लेना, ईर्षा करना, दूसरे को नीचा दिखाना यह द्वेष के ही रूप हैं। प्रायः वैर लेने के भावसे

* इस विषय पर विशेषके लिये हमारी सृष्टिविज्ञान मू० २) पुस्तक देखो।

लोग सैंकडों रुपये न्यायालयों की भेट करते हैं। विद्यार्थी ईर्षा द्वेष के कारण एक दूसरे को गाली देते वा बुरा कहते हैं। मानसिक बल प्रत्येक मनुष्य का इतना बढना चाहिये कि वह दूसरे के मानसिक पाप अर्थात् द्वेष को सह सके वा क्षमा कर सके। हरिवर्ष तथा पाताल देशों में सेना बढ़ाना प्रत्येक समाज अपना परम धर्म व्यवहार द्वारा दर्शा रहा है। कभी कभी कोई धर्मात्मा सुधारक उठकर लोगों को बतलाता है कि किस प्रकार समता (शान्ति) रह सकती है। हमारे ऋषि समझते थे कि सेना कम करने के लिये **मानसिक धर्म** बल की आवश्यकता है। जब मन से द्वेष जाता रहेगा तो फिर भाषणों वा समाचार-पत्रों में द्वेषपूर्ण लेख क्यों निकलेंगे और सेना द्वारा शस्त्रों का प्रहार रात दिन क्यों बढेगा? मानसिक द्वेष जो सर्व प्रकार की अशान्ति का मूल है उसको निर्मूल करने के लिये धन के भारी व्यय की जरूरत नहीं। जरूरत है इस तत्वको समझने की, कि जिस पापी वा दुष्ट को हमारे समाज वा मुझ व्यक्ति से प्रथम मानसिक द्वेष करने की मन में सूझी है उसको हम वा मैं सहन कर सकें। यह निश्चित बात है कि वह पापी ईश्वरीय व्यवस्थारूपी शासन के बाणों से अवश्य दंड पाएगा।

प्रश्न हो सकता है कि इस मंत्र में अस्मान् शब्द जिसके अर्थ हम वा सभा के हो सकते हैं व्यक्तिगत उपदेश नहीं दे सकता? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि मंत्र में एक

आदर्श संगठन का भाव है। इसके अनुसार प्रत्येक देश व खंड में जन समाज ऐसा होना चाहिये जिसकी समग्र संख्या किसी एक मनुष्य से द्वेष का व्यवहार प्रथम न करे और यदि कोई एक मनुष्य वा अल्प संख्या वाले समाज से द्वेष करें तो संगठन का बल इतना उच्च और महान् होना चाहिये कि उसको ईश्वरीय दंड पर छोड़ सके अर्थात् सहन कर सके। हां जब किसी देश में किसी श्रेष्ठ मनुष्य समाज के साथ द्वेष करनेवालों की संख्या बढ जावे तो उस आपत्ति काल की दशा में इस मंत्र की बतलाई हुई औषधि अर्थात् सहनशीलता (क्षमा) से काम नहीं चलेगा। उस समय वैद्य (डाक्टर) समान शस्त्र से रोग का मूल दूर करने के लिये श्री रामचन्द्र महाराज वा श्री कृष्णचन्द्र महाराज तथा सर्व वीर क्षत्रिय मंडल समान 'मन्यु' से काम लेना होगा।

एक मानव जाति को सच्चे उपदेश सहनशीलता वा क्षमा के मिल सकें यही हमारी मनोकामना है, ताकि सर्व पृथिवी में शान्ति और ईश्वरवाद का युग आरंभ होकर, मनुष्य एक दूसरे के आर्य (प्रगति शील) बन्धु बनें, न कि द्वेषी वा शत्रु।

दिशा आकाशस्थ मार्ग विशेष का नाम है। साधारण लोगों को यह समझाने की जरूरत है कि उंगली से जो आकाशस्थ मार्ग की तरफ निर्देश किया जाता है वह दिशा बोधक होता है। जब मनुष्य अपनी उंगली से आकाशस्थ किसी भी

मार्ग को दर्शाता है तो वह दिशा समझनी चाहिये। दिशा का आरंभ मनुष्य अंगुल निर्देश से कर सकता है किन्तु उस का अन्त अनन्त आकाश में ही होगा। सूर्योदय को देख कर हम उस की तरफ उंगल निर्देश करते हैं और उस तक के आकाश रूपी अदृश्य मार्ग को दिशा कहते हैं। जहां पर हम खड़े हैं वहां से पूर्व की तरफ यदि प्रवास करते हुए भूलोक के पूर्वीय देश जयपान (जापान) तक पहुंच जावें तो पूर्व दिशा जयपान में समाप्त नहीं होगी। वहां जाकर यदि हम पाताल (अमेरिका) को जापान के पूर्व समझ कर प्रवास करें, तो पूर्व दिशा, पातालमें भी समाप्त नहीं होगी, कारण कि अमेरिका देशसे जोभी पूर्वीय गगन वा आकाश मार्ग है वही हमारी अनोखी प्राचीदिग् है।

आजकल अंग्रेजी के विद्वान् कहा करते हैं कि भूगोल शास्त्र पढ़ाना प्रत्येक बालक को आवश्यक है, इसलिये कि इससे मनुष्य का मन विशाल हो कर महान् पृथिवी के नाना देशों में घूम सकता और उदार वृत्ति धारण करता है। प्राचीन काल में ऋषि लोग जब विद्यार्थियों को इस मंत्र द्वारा पहिले 'दिग्' शब्द का विज्ञान देते थे, तो भूलोक की सीमा को उल्लंघन कर, उस से परे आकाश मार्ग द्वारा सूर्य्य तक की दिशा को 'प्राचीदिग्' समझने से मानसिक ज्ञान कितना विशाल होता होगा, इस की कल्पना सहज से की जा सकती है।

आजकल नवीन शिक्षण पद्धतियों के अनुसार भूगोल वा

भूलोक के ज्ञान के साथ साथ यदि सूर्य विज्ञान का पाठ जोड दिया जावे, तो इससे मन को थकान नहीं होगा। इस वेदमंत्र के कई भाग हैं। 'प्राचीदिग्' का भाग भूलोक वा भूगोल का एक पाठ है। २. दूसरा पाठ सूर्य्य विज्ञान का है। ३. तीसरा पाठ इन पदार्थों को **महान्-रक्षक, रक्षक** तथा **दंडदाता** वर्णन करता हुआ सृष्ट पदार्थों को परोपकारी और न्यायकारी ईश्वर की महिमा बोधक दर्शाकर इन के अटल नियमों के पालन करने में ही हित है बोधन करा रहा है। ४. चौथा पाठ बलवान् समाज को क्षमाशील बनने की हितकारी नीति दर्शा रहा है। इस लिये शिक्षण पद्धति अनुसार जो क्रम मंत्रमें चार प्रकार के विज्ञान सिखाने के लिये मिलता है उस के सर्व उत्तम होने में संदेह ही क्या है? ५. पांचवां पाठ मंत्र की रचना कविता का बोध दे रही है। कविता शिक्षण का भारी उपयोगी अंग माना गया है। इस के चार लाभ सर्व विद्वान् स्वीकार करते हैं।

१. इस से मनोरंजन होता है। सभ्य लोग क्यों नाटक तमाशों में जाते हैं? केवल इस लिये कि कविता का रस लेकर मन को रंजन किया जावे।

२. इसके द्वारा सहज से कई बातें चिरकाल तक स्मरण रह सकती हैं। ३. इसके अलंकारों से विषय का तत्व मन पर पूर्ण रूप से अंकित हो सकता है। ४. पुस्तकों के लिखने

छापने पर जो भारी व्यय होता है वह बहुत अंश तक बच सकता है। इस लिए इस वेद मंत्र ने

१ भूगोल विज्ञान २ सूर्य वा पदार्थ विज्ञान
३ व्यावहारिक विज्ञान ४ नीति विज्ञान और
५ काव्य संगीत विज्ञान के पाठ सिखा दिये।

इस मंत्र में सूर्य्य की गति वा शक्ति का जो महान् उपदेश मिलता है, वह प्रत्येक मनुष्य प्रातःकाल जागृति के रूप में अनुभव करता है। सूर्य उदय के समय क्यों प्राणी मात्र जाग पड़ते हैं? इसका उत्तर यह है कि सूर्य्य की गति उनको गतिवान् अर्थात् जागृत कर देती है। उसी काल से लेकर सायंकाल तक, गति कर्म व क्रिया का काल क्यों है? इस लिए कि गति का भंडार सूर्य सबको गति वा क्रिया करने की प्रेरणा कर रहा है। इस लिये अनेक तपस्वी लोग दिनको कभी नहीं सोते। एक गृह्यसूत्र में लिखा है कि तपस्वी मनुष्य को अपने सब काम खडे होकर करने चाहियें। पुरुषार्थ करने का प्रथम पाठ, सूर्य का यह महान् गति गुण मनुष्य समाज को दे रहा है।

दूसरा पाठ सूर्य के काले दागों वा कृष्ण भाग से युरोप के पदार्थ विज्ञानियों के शब्दों में उस की चुम्बक आकर्षण शक्ति का उपयोग है। वह मान रहे हैं कि कृष्ण रूपी सौर भाग आकर्षण का आधार है। सूर्य की काली कंद्राएं उसकी चुम्बक आकर्षण शक्ति का स्पष्ट बोधक हैं।

आज कल प्रकाश संबंधी बहुत सी उत्तम पुस्तकें अंग्रेजी में उपलब्ध हैं। यदि हम इस विषय पर उक्त अनेक प्रामाणिक लेखों वा पुस्तकों के अनुसार युरोप के पंडितों के विचारों का निम्न लिखित सार अपनी भाषा में पाठकों को अर्पण करें तो यह अनुचित न होगा। वचनसार यह है।

१ जो आंखका विषय है उसी का नाम प्रकाश है।

२ सूर्य तथा अन्य सब प्रकार के प्रकाशप्रद पदार्थों से जो प्रकाश एक स्थल से दूसरे स्थल तक जाता है इसकी ऋजु वा सीधी गति होती है।

३ कई वस्तुएं जिनमें से प्रकाश लंघन कर जाता है वह पारदर्शक हैं। यथा शीशा, कांचादि।

४ कोहर, उत्तम मोम, दूध की लस्सी तथा रेतीलाशीशा यह मध्यवर्ती पारदर्शक हैं।

५ वायु तथा जल कुछ कुछ ज्योति को रोकने वाले हैं।

६ प्रकाशकी दो प्रकार की गति है (क) एक दर्पण जन्य इस के कारण हम दर्पणादि में अपना अनुरूप देखते हैं (ख) दूसरी त्रिकोण-कांच प्रवश।

७ प्रकाश की छाया दो प्रकार की है एक साधारण दूसरी प्रतिबिम्ब जो तालाबादि में प्रतीत होती है।

८ (क) दर्पण जन्य गति के अन्तर्गत चित्र कला रूपी दर्पण उपयुक्त होते हैं। (ख) शुक्र कला रूपी दर्पण।

९ त्रिकोण कांच प्रवेशनि गति का उपयोग चन्द्राकार अर्ध चन्द्राकार इत्यादि अनेक प्रकार के दर्शक कांच बनाने में होता है।

१० इन्द्र धनुष्य द्वारा सप्तरंगा किरणें प्रतीत होती हैं, जिन रंगों के नाम यह हैं। १. लाल Red २. पीला Yellow ३. हल्का नीला Blue ४. नीला वा कृष्ण Indigo ५. हरा Green ६. नारंगी Orange ७. हल्का बैंगनी Violet इन सब के मिश्रण को सौर श्वेत कहते हैं। त्रिकोण बिल्लौर (घनकांच) को सूर्य के प्रकाश में रखने से सप्त प्रकार के रंग दीखते हैं।

११ दर्शक कांच मुख्य कर के दो प्रकार के नियम पर बनाए जाते हैं। प्रकाश को एक स्थल पर एकत्रित करने के लिए जो दर्शक कांच उपयुक्त होते हैं उन को convergent lens वा संवर्गी कांच कहते हैं। विदित हो कि उक्त कनवर्जन्ट शब्द संस्कृत के संवर्गन का अपभ्रंश है कारण कि सी (c) अक्षर के उच्चारण अंग्रेजी में 'क' और 'स' दोनों ही होते हैं। इसी लिये कॉन का उच्चारण पहले सॉन होता होगा और सॉन संस्कृत के 'सम' उपसर्ग का बिगाड है। वर्ग शब्द संस्कृत कोष में एकत्रित करने के अर्थ में भी आता है। और यहां वरजन्ट में

g (जी) का दूसरा उच्चारण ग होता है और ent 'एन्ट' अन्त का बिगाड है।

१२. चक्षुगोलक की आकृति अनेक प्रकार के प्रतिबिंब दर्शक यंत्रों के आविष्कार का भारी कारण हुई है।

१३. प्रकाश की गति १ सेकंड में १९६००० मील मानी गई है।

१४. अन्तिम भारी तत्त्व की बात प्रकाश संबंधी यह है कि प्रकाश तरङ्गवत् **गति-प्रद** है और इसी लिए Kinetic Energy अर्थात् गतिप्रद शक्ति इस का नाम है।

सर्व प्रकार के भयंकर प्राणी प्रकाश से डरते हैं। लाल प्रकाश से विशेष कर डरते हैं। इसी लिये क्षत्रिय लोगों की देशी रियासतों में पगड़ियां लाल होती हैं। और लाल रंग के कपड़े प्राचीन आर्य क्षत्रिय तेजस्वी बनने के लिये पहना करते थे।

पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्रकेतुम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥

(ऋ. मं. १ अ. १८ सू. १२४ मंत्र ५)

अर्थ—" (रजसः) लोक समूह के (पूर्वे) प्रथम आगे वर्तमान (अर्धे) आधे भाग में (केतुम्) किरणों को (प्र, आ, अकृत) प्रसिद्ध करती हैं।"

भावार्थः—"सूर्य मण्डल का प्रकाश भूगोल के आधे भाग में सब कभी उजेला करता है और दूसरे आधे भागमें रात्रि होती है।

(देखो ऋषि दया० भाष्य)

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः॥

(ऋ मं. १ अ. २४ सू. १९१ मं. ८)

अर्थ "(सर्वान्) सब पदार्थ (अदृष्टान्) जो कि न देखे गये उनको (जम्भयन्) अंग अंग के साथ दिखलाता हुआ (अदृष्टहा) जो नहीं देखा गया अन्धकार उस को नाश करने वाला (विश्वदृष्टः) संसार में प्रगट (सूर्य्यः) सूर्य्य मंडल (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (उदाति) उदय को प्राप्त होता है वैसे (सर्वाः) (च) (यातुधान्यः) सभी दुराचारियों को धारण करने वाली दुर्व्यथा निवारण करनी चाहिये।"

सार यह है कि पूर्व दिशा में उदय होने वाला सूर्य अन्धकार तथा 'दुर्व्यथा' रोगादि के एक कारण अप्रकट रोग जंतुओं को विनाश करता है।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण।

(ऋ. मं. १ अ. ९ सू. ५० मं. ८)

पदार्थः—"हे (विचक्षण) सब को देखने वाले (देव) सुखदेने हारे (सूर्य्य) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर जैसे (सप्त) हरितादि सात (हरितः) जिन से रसों को हरता है वे किरणें (शोचिष्केशम्) पवित्र दीप्तिवाले सूर्य्य लोक को (रथे) रमणीय लोक में

(वहन्ति) प्राप्त करते हैं वैसे (त्वा) आप को [हम प्राप्त हों]

सार–रश्मियों के विना सूर्य्य का दर्शन नहीं हो सकता और वह रश्मियां सात रंग वाली हैं। यथा लाल, पीला, हलका नीला, नीला वा कृष्ण, हरा, नारंगी तथा हलका वैंगनी।

इससे अगले नवें मंत्र में इन्हीं **सात किरणों** को रोग नाशक वा शुद्धि करनेवाली कहा गया है। मंत्र यह है:--

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ऋ. मं. १ अ. ९ सू. ५० मं. ९

(शुन्ध्युवः) के अर्थ शुद्धि करने वाली के हैं और शुद्धि से मतलब विष तथा विषैले अदृश्य रोग जन्तु को विनाश करने का है।

पृथिवी गोल है इसको प्रत्येक मनुष्य निम्न लिखित प्रकार प्रत्यक्ष रीतिसे जान सकता है (१) जब वह **जंगल** में खडा होकर चारों तरफ देखे तो उसको भूमि की क्षिति (भूतलसन्धि गोलाकार ही दृष्टि पडती है (२) दूसरे जब वह किसी ऊंचे स्थल, मकान, महालय (महल) पहाड आदि पर खडा होकर देखे तो भी उसको पृथिवी चारों तरफ गोलही दृष्टि पडेगी (३) तीसरे ऋग्वेद के एक मंत्र सर्व प्रकार के सृष्टि के लोक लोकान्तरों को बहुत उत्तमता से दो भागों में विभक्त किया है। एक तो वह लोक जो स्वयं प्रकाशक और दूसरे वह जो स्वयं अप्रकाशक हैं। प्रकाशक प्रकार के लोकों का नाम **सूर्य्य** और दूसरे प्रकार

के लोक चन्द्र नाम वाले हैं। संसार में कई लोग इन को तारे कह देते हैं। सब ही पश्चिम तथा पूर्व के विद्वान् इन तारों के उक्त दो भाग ही करते हैं। जो स्थिर वा अचल तारे (Fixed Stars) ध्रुव तारे के समान हैं उनको सूर्य्य और दूसरों को ग्रह का नाम दिया जाता है। ग्रह, उपग्रह, भ्रामक तारे पृथिवी तथा चन्द्र वास्तव में सब एक ही स्वरूपधारी लोक हैं। नक्षत्र भी तारों के समूह वा मंडल का ही नाम है। उस मंडल का एक एक सभ्य तारा, चन्द्र, ग्रह आदि नामधारी ही हैं। बारह राशि भी तो १२ तारागण मंडल ही हैं। धूम्रकेतु वह बालग्रह वा बालचन्द्र हैं जो अभी पूर्ण गोलाकार नहीं हुए अर्थात् अपनी उत्पत्ति वा बाल्यावस्था के चन्द्र हैं। अतः सर्व विश्व में सर्व लोक दो ही विभागों में विभक्त होंगे—एक—सूर्य्य वा ध्रुवतारे। दूसरे चन्द्र, पृथिवी, ग्रह उपग्रह, भ्रामक तारे, तारा मंडल, तारा राशि, बालचंद्र (धूम्रकेतु)

ऋग्वेद के इस मंत्रने बहुतही उत्तम बात की जो सर्व रचना के पृथिवी आदि लोकों के लिये **चन्द्र** शब्द का प्रथम प्रयोग किया। एक विद्यार्थी जिसको यह निश्चय करना है कि पृथिवी **गोल** है उस को सबसे पहिले यह समझ लेना चाहिये कि **पृथिवी बडा चन्द्र और चन्द्र छोटी पृथिवी** है। वास्तव में चन्द्र और पृथिवी विज्ञान दृष्टि से एक ही प्रकार के लोक तथा पर्य्यायवाची शब्द हैं। इतनी बात समझने पर यदि कोई जन

किसी विद्यार्थी से प्रश्न करे कि भाई पृथिवी और चन्द्र एक ही जाति के हैं तो अब बतलाइए कि Reasoning by Analogy अथवा उपमान प्रमाण से पृथिवी गोल है वा चौरस ? विद्यार्थी दृढ मनसे उत्तर देगा कि निःसंदेह पृथिवी गोल है, कारण कि उसका छोटा भाई चन्द्र भी तो गोल ही है जो मुझे दृष्टि पड रहा है। चन्द्र भूमि की परिक्रमा करता है यह तत्व विद्यार्थी एक चन्द्र मासमें चन्द्र के उदय अस्त तथा कला वृद्धि ह्रासादि को देखकर अनुमान द्वारा निश्चय कर सकता है। चन्द्र लोक प्रकाश रहित है। यह बात वह अपनी पृथिवी के दृष्टान्त से समझ सकता है। वह प्रतिदिन प्राची दिशा में सूर्य्योदय से पूर्व अपने भूगोल पर अन्धकार ही अनुभव करता है और दिनभर भूगोल को सूर्य्य प्रकाश देता है यह वह जान गया इस परसे चन्द्र भी भूगोल समान प्रकाश रहित होना चाहिये इसके समझने में उसको अड-चण नहीं होगी।

ध्रुव तारे वा सूर्य्य अपनी कीली पर ही गति करते हैं और पृथिवी आदि ग्रह वा चन्द्र लोक, सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं यह बात ऋग्वेद के इसी मंत्र*में बतलाई है। सूर्य्य के गिर्द परिक्रमा का फल **संवत्सर** की उत्पत्ति और चन्द्र वा पृथिवी की दैनिक गति का फल **अहोरात्र** वा दिन रात की उत्पत्ति है। चांदमें दिनरात होते हैं वा नहीं इसका उत्तर इसी शब्द में आ गया कि चन्द्र पृथिवी एक ही जाति के हैं। चांद में दिन रात होते हैं।

* ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४८ मं. २-३

३

मंत्र भी यही कह रहा है कि विश्व के प्रत्येक चन्द्र, ग्रह उपग्रह पृथिवी वा तारा में संवत्सर और अहोरात्र होते हैं। पृथिवी की वार्षिक गति वा सौरपरिक्रमा का फल जब **संवत्सर** कह दिया गया तो सूर्य्य रूपी केंद्र के गिर्द यह घूमती है यह बात अर्थापत्ति से आप ही आ गई। जब अहोरात्र की उत्पत्ति का वर्णन मंत्र ने कह दिया तो पृथिवी वा चन्द्र की दैनिक गति अर्थापत्ति से सब समझ सकते हैं।

बृहत्संहिता के अ० ४ से निम्न श्लोक इसी विषय संबंधी लिखे जाते हैं:—

नित्यमधः स्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्धम्।
स्वच्छाययान्यदासितं कुम्भस्येवातपस्थस्य ॥ १ ॥

भाषा—"एक घडे को सूर्य की धूप में रख देने से जैसे उसका वह अर्ध भाग जो सूर्य के सन्मुख रहता है सूर्य्य की किरण से धौला होता है और दूसरा आधा भाग जैसे अपनी छाया से काला रहता है; तैसे ही सूर्य्य के निचले भाग में विराजित चन्द्रभाग का आधा भाग प्रतिदिन सूर्य्य की किरण से प्रकाशित होता है और आधा भाग अपनी छाया से कृष्ण वर्ण रहता है ॥ १ ॥

सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्।
क्षपयन्ति दर्पणदरनिहता इव मन्दिरस्यान्तः ॥ २ ॥

भाषा—"जैसे दर्पण के ऊपर सूर्य की किरणें गिरकर अंधि-

न्यारे घरके भीतर घुसकर अपने प्रतिबिंब से घरके भीतर का अंधकार नाश करता है, वैसेही जलमय चन्द्रमा के ऊपर सूर्य की किरणें गिरकर रात्रि के अन्धकार समूहका नाश करती हैं ॥ २ ॥

त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादवलम्बते यथा शौक्ल्यम् ।
दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधःप्रभृत्युदयः ॥ ३ ॥

भाषा—सूर्य का निचला भाग छोडते छोडते चन्द्रमाका पश्चिम भाग सूर्य की किरण के वशसे जितना शुक्ल वर्ण धारण करता है, नीचे आदिमें वह उतना उतना ही प्रकाशित होता जाता है ॥ ३ ॥

प्रतिदिवसमेवमर्कात् स्थानविशेष शौक्ल्य परिवृद्धिः ।
भवति शशिनोऽपराह्ने पश्चाद्भागे घटस्येव ॥ ४ ॥

भाषा—" इसही भांति प्रतिदिन स्थानविशेषके वशसे तीसरे प्रहर के समय घडे के समान, पिछले भाग में सूर्य द्वारा चन्द्रमा का शुक्ल पण बढा करता है ॥ ४ ॥

बृहत्संहिता के उक्त प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि चन्द्र अप्रकाशक लोक है और इसमें प्रकाश सूर्य किरण द्वारा आता है। यद्यपि प्रत्येक भूगोलवासी इस बात को अपने अनुभव से खूब जानता है कि पृथिवी अप्रकाशक लोक है तथापि उसी उपमान प्रमाण की शैली से वह कह सकता है कि पृथिवी तथा मंगल बुध आदि सर्व ग्रह सूर्य्य से प्रकाशित होते हैं।

सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥

यजु. अ. २३ मंत्र ४६

पदार्थः-" (सूर्य्य): सूर्यलोक (एकाकी) अकेला (चरति) स्वपरिधि में घूमता है (चन्द्रमा) आनन्द देनेवाला चन्द्रमा (पुनः) फिर फिर (जायते) प्रकाशित होता है । (अग्नि) पावक (हिमस्य) शीतका (भेषजम्) औषध और (महत्) बडा (आवपनम्) अच्छे प्रकार बोने का आधार कि जिसमें सब वस्तु बोते हैं (भूमिः) वह भूमि है ।"

'सूर्य एकाकी चरति'। इस वेद वचन से सूर्य अपने स्थानपर रहकर अपनी धुरी पर घूमता है । उत्तर की तरफ सप्त ऋषि नामी तारा गण जिस ध्रुव नामी सूर्य्य की परिक्रमा करते हैं वह ध्रुव उनकी परिक्रमा नहीं करता । हमारे सौर मंडल को समझाने के लिये उक्त सप्त ऋषि मंडलका दृष्टान्त सृष्टिमें विद्यमान् है । ऋषिदयानन्दने युजर्वेद भाष्य में " उद्वयं तमसः परि यजु. अ. ३८ मं. २४ मंत्र के उत्तर शब्द के अर्थ उत्तर भाग (दिशा) किया है और फिर यजु. अ. २० में २१ वी संख्या पर यह मंत्र आया है वहां पर सूर्य शब्द के अर्थ पहले सूर्य लोक और विकल्प में ईश्वर के किये हैं । ऋग्वेदभाष्य तथा पंच महायज्ञविधि में उक्त ऋषिने यह मंत्र सर्वथा ईश्वर परक उत्तमता से घटाया है । अतः ऋषि भाष्य के आधार पर इस मंत्र के भौतिक अर्थ उत्तर दिशा के सूर्य संबंधी होते हैं ।

उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य मगन्म ज्योतिरुत्तमम् । य. अ. २० मं. २१

(वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से पृथक् वर्तमान (उत्तरम्) उत्तर दिशा में वर्तमान (देवत्रा) प्रकाशक पदार्थों में (देवम्) दिव्य प्रकाशक (उत्तमम्) उत्तम वा महान् (ज्योतिः) सब के प्रकाशक (सूर्यम्) सूर्य लोक को (पश्यन्तः) देखते हुए (स्वः) सुख को (परि, उत अगन्म) सब तरफ से उत्कृष्टता के साथ प्राप्त होवें ।

युरोप के विद्वान् लिखते हैं कि Fixed Stars (ध्रुव तारा गण) सूर्य्य हैं । " उद्वयं तमसः परि " इस वेद मंत्र में 'पश्यन्त उत्तरं' इत्यादि वचनों के साथ 'सूर्य्य'का शब्द भी दिया है यह उत्तर दिशा का सूर्य्य वेदने स्पष्ट कहा है । इसी का दूसरा नाम ध्रुवतारा है । 'सूर्य असंख्य हैं' ऐसा यूरोप के सब ज्योतिषी लिखते हैं । वेदमें भी यही तत्व दर्शाया गया है कि सूर्य असंख्य वा अनन्त हैं । ' सहस्र ' शब्द के अर्थ सब ही कोषकारों ने अनन्त के किये हैं । वह मंत्र यह है जिस में सूर्यों के सहस्र होने का वर्णन है ।

यद्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः । नत्वा
वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥
(ऋ. मं. ८ अ. ८ सू. ७० मं. ५)

(अर्थ) हे ईश्वर दोनों लोकों, सौ लोकों और सहस्रों सूर्यों में भी यह प्रभा नहीं कि तेरी महिमा की स्पर्धा कर सकें । इस से जहां इन्द्र के अर्थ ईश्वर के घटते हैं वहां असंख्य सूर्यों का होना सिद्ध होता है । यूरोप के विद्वान् भी इसी तत्त्व को मान चुके हैं कि सूर्य असंख्य हैं ।

सूर्य रश्मियों के सप्तरंग जानने के लिये दो प्रहर को जब कि सूर्य सिरपर हो किसी घने **वृक्ष** के नीचे खडे हो कर उस के पत्तों में क्षणभर देखने से रश्मियों में रंग प्रतीत होंगे । अधिक देखना हानिकारक काम है । पत्तोंपर की **ओस** में कभी कभी रश्मियोंके रंग दृष्टि पडते हैं । ऊंचे मोटी रेतके टीलोंमें मोटे रेत के कणोंद्वारा सप्तरंग दृष्टिगत होते हैं । वर्षाऋतु में बादलों में इन्द्रआयुध (इन्द्रधनुष्) में मनोहर सप्तरंग नजर आते हैं । इन्द्र आयुध ने निर्णय कर दिया कि सूर्य रश्मियों में सात ही रंग होते हैं ।

मणि (हीरा), स्फटिक (बिल्लोर) तथा दर्पणकोन से भी किरणों के सात रंग दृष्टि गत होते हैं ।

मंत्र का सारः–(१) प्राची दिग्–इन वचनों से इसने भूगोल विद्या का ज्ञान दिया ।

(२) अग्नि, असित तथा आदित्य शब्दों द्वारा–सूर्य विज्ञान सिखाया ।

(३) तेभ्यो नमो से सृष्टि नियमों के अनुकूल चलना वा उत्तम कर्म करना जो उन्नति का गुर है बताया।

(४) अधिपति, रक्षितृ, और इषु के अलंकार से संगठन वा समाज निर्माण के अधिकारी वर्ग का ज्ञान दिया।

(५) जंभे शब्द ने दर्शाया कि यह सृष्टि नियम सब को वश करने वाले हैं।

(६) इषु शब्दने बताया कि सृष्ट पदार्थ सज्जनों को सुख और दुष्टों को दुःखद हैं।

(७) दुष्ट वह है जो पहिले अकारण आक्रमण करता है। समाज वा अधिक संख्या वालों को महान् बलवान् तथा धर्मात्मा होने पर अल्प संख्या वाले दुष्टों के द्वेष को क्षमा अर्थात् सहन करना चाहिये।

(८) मंत्र की रचना छन्द में होने से मंत्र संगीत विद्या का प्रकाशक, मनोरंजक तथा स्मृति वर्धक है।

(९) उस देश में रहना चाहिये जहां प्रतिदिन सूर्य प्राची से निकलता और हम उसकी प्रातःकाल कि किरणों को अपने शरीर पर धारण करते हुए भयंकर रोगों को दूर भगा सकें। जहां छ मास का दिन तथा छ मास की रात है वह देश ईश्वरने मनुष्य के रहने के लिये नहीं बनाए। युद्धादि आपत्ति वा भूमि तृष्णा के कारण यदि कोई मानवी समाज वहां जा बसा है तो

उसको वहां से उत्तम देशों में लाकर बसाना चाहिये । ' दी बुक आफनालेज ' के कर्ता लिखते हैं कि ग्रीनलैंड आदि देश जिनका बडा भाग इस समय हिम आच्छादित रहता है हितकर मानवी निवास स्थान नहीं हैं और वह कहते हैं कि भूमध्य रेखा के निकटवर्ती उष्ण प्रदेश उत्तम निवास स्थान हैं ।

इंगलैंडके नामी डाक्टर एलेन्सन का कथन है कि "मनुष्य की खाल पर ध्रुवीय पशुओं समान लंबे बाल नहीं इसलिये यह ध्रुवीय प्रदेशों में रहनेके लिये ईश्वरने नहीं बनाया । इसकी खाल पसीना निकालनेवाली छोटे छोटे रोमोंसे युक्त है इसलिये यह अति शीत प्रधान देशोंमें बसने वाला प्राणी नहीं । " मनुष्यके रहने का देश कौनसा हो ? इसका उत्तर मंत्र दे रहे हैं । पारिक्रमाके ६ मंत्र आदर्श देशकी छ प्रकार की सीमा बतला रहे और छ प्रकारके बाणवत् रक्षक पदार्थों का उनमें होना कहरहे हैं । अतः विचारवान् सोचलें कि भूलोकमें वही देश रहने योग्य होसकते हैं जिनकी उक्त सीमा हो सके । भूगोल शास्त्री देश का लक्षण करते समय उस की उत्तर, पूर्व, दाक्षिण और पश्चिम सीमाओं का वर्णन किया करते हैं । वेद मंत्र बतलाते हैं कि उस देश में तुम रह सकते हो जहां प्रतिदिन प्राचीदिशा से तुमको सूर्य दृष्टि पडे इत्यादि ।

(१०) दसवीं बात यह मन्त्र बड़ी भारी व्यवहारोपयोगी बतलाता है । भूमि जल तथा वायु मंडल में कोई भी विद्वान् यात्रा करके स्वदेश को पीछे नहीं लौट सकता जब तक कि उसको

दिग् विज्ञान न हो। रेल के प्रचार ने दिग् विज्ञान के उपयोग को और बढा दिया है और अनेक प्रकार के भूचित्र तथा ध्रुव बोधक यंत्र प्रत्येक नाविक के जलयान में सर्वदा रखे रहते हैं। पुराने समय में भारतीय ब्राह्मण उत्तम दिग् विज्ञान के कारण सर्व देशों में धर्म्म तथा विद्या प्रचार के लिए जाया करते थे। बृहत्संहिता तथा मेघदूत के पढ़ने वाले अनेक देशों वा नगरों के नाम तथा उनका वृत्तान्त पढते हैं जिससे पुराने आर्य्य विदेश यात्रा के कितने प्रेमी थे यह बात सिद्ध हो सकती है।

ऋग्वेद मं. १ अ. २४ सू. १९१ मं. ५ में बतलाया है कि पूर्व दिशा में (उदयति) उदय को प्राप्त होने वाला सूर्य सब अदृष्ट रोगों को दूर करता है। अतः सूर्यरश्मि विषहर हैं।

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि: विंशतिश्च तस्थुः ॥ ऋ. मं. १ अ. २२ सू. १६४ मं. ११

पदार्थः—"हे (अग्ने) विद्वान् तु (अत्र) इस संसार में जो (द्वादशारम्) जिसके बारह अंग हैं वह (चक्रम्) चक्र के समान् वर्तमान संवत्सर (द्याम्) प्रकाशमान् सूर्य के (परि वर्व-र्ति) सब ओरसे निरंतर-वर्त्तमान है (तत्) वह (जराये) हानिके लिए (नहि) नहीं होता है इस संसार में (ऋतस्य) सत्य कारण से (सप्त) सात (शतानि) सौ (विंशतिः) बीस

(च) भी (मिथुनासः) संयोगसे उत्पन्न हुए (पुत्र) पुत्रों के समान तत्त्व विषय (आ, तस्युः) अपने अपने विषय में लगे हैं उन को जान।" इससे वर्ष के बारहमासों का पूर्ण रूप से ज्ञान होता है। बारहमासों के नाम यह हैं:–चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ तथा फाल्गुन।

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा. (यजु. अ. १५ मं. १०) इसका **भावार्थ** ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि

"पूर्वा दिक् तस्मादुत्तमास्ति यस्मात् प्रथमं सूर्य्य उदेति।"

(भाषा) पूर्व दिशा इस लिये उत्तम कहाती है कि जिस से सूर्य्य प्रथम वहां उदय को प्राप्त होता है।"

"Telescopes were known to the Druids."

According to Strabo "A large mirror was elevated on the summit of the temple of the Sun at Heliopolis to reflect in that temple the full splendour of its meridian beam whilst another of still larger dimensions was placed on the Pharos at Alexandria in such a manner as to reflect ships approaching Egypt at a great distance and imperceptible to the eye."*

स्कौटलैंड के अग्निकुण्ड नामी अंग्रेजी पुस्तक में जो उपर्लिखित वचन है उसका अनुवाद यह है। "ड्रूविड लोगों को दूरवीनें

*Fire Towers of Scotland by Godfrey Higgins.

मालूम थीं। इतिहास कर्तास्ट्रेबो लिखता है कि एक बडा शीशा सूर्य्य मंदिर की शिखरपर हेलीऑसपोलिस में रक्खा रहता था। ताकि मंदिर में मध्यान्ह सूर्य्य के पूर्ण तेजका बिम्ब पड सके और इससे भी एक बडे आकारवाला शीशा एलेक्ज़ेन्ड्रिया के फॅरोस में रक्खा रहता था ऐसी युक्ति से कि मिसर को आनेवाले जहाजों का बिम्ब बडी दूर से जिसको चर्मचक्षु नहीं देख सकती थी दिखाता था।" विदित हो कि इंग्लैंड के सब से पहले और पुराने लोगोंके धर्मगुरु ड्रुविड कहलाते थे और यूरपके सर्व समक्षिक मानते हैं कि यह ड्रुविड शब्द द्विवेदी ब्राह्मणों के लिए था जो बिगडकर प्रथम द्विद फिर ड्रुविड हो गया। इन इंग्लैन्डी ब्राह्मणों को दूरबीन का पूर्ण ज्ञान था यह बात उक्त प्रमाणसे सिद्ध है।

अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती।
अथो अवघ्नता हन्त्यथो पिनष्टिपिंषती॥

ऋग्वेद मं. १. अ. २४. सू. १९१ मं. २

पदार्थः-"(आयती) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई ओषधी (अदृष्टान्) अदृष्ट विषधारी जीवों को (हन्ति) नष्ट करती (अथो) इसके अनन्तर (परायती) पीछे प्राप्त हुई ओषधी (हन्ति) विष धारियों को दूर करती है"।

इससे पाया गया कि जिसको यूरोपके डाक्टर लोग जर्म्स कहते हैं उनका वर्णन इस मंत्र में है। अदृष्ट विषधारी जीवोंको ही जर्म्स कहते हैं।

इससे अगले आठवें मंत्र में उदय होने वाले सूर्यको जो इनका नाशक कहा गया है उसका कारण यह है कि उदय होने वाले सूरज की किरणें क्षण क्षण में बलवान् होती जाती हैं जिससे वह इन जर्म्स को दूर भगा देती हैं।

इससे आगे बाहरवें मंत्रमें इक्कीस प्रकार के पक्षिओं को विष-नाशक बताया है: और चौदहवें मंत्रमें मोर पक्षी को विषनाशक दर्शाया और सोलहवें में नेवले को बिच्छु के विष का निवारक दर्शाया गया है। पक्षी मोर और नेवला आदि पालने का विधान इन मंत्रों में मिलता है।

मुख्य विषय यह था कि सूर्यकी किरणें रोगों तथा विषवाले अदृश्य जीवों को नाश करने में समर्थ हैं। पारसी लोग जो अग्नि होत्री आर्य हैं ईश्वर उपासना के समय वैदिक भारतीय आर्यों के समान सूर्य उदय की दिशा में मुख करके बैठते हैं इससे सूर्य की किरणों का लाभ लेते हैं। महर्षि मनुजी ने प्रातः काल की संध्या पूर्व की तरफ और सांय सन्ध्या पश्चिम को मुख करके करने का जो उत्तम विधान किया है उसमें भारी तत्त्व यह है कि दो काल सूर्य के ताप को छाती नासिका आदिपर लेनेसे भारी लाभ होंगे। यह ठीक है कि सांयकाल को सूरज की किरणें उतनी प्रबल नहीं होती जितनी कि प्रातः काल तथापि कुछ लाभ अवश्य पहुंचा सकती हैं यह निर्विवाद है। इस लिये महर्षि मनु की बताई हुई सन्ध्या करनेकी मर्यादा अति उत्तम है।

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्। सा कद्रीची कं स्विदर्धं पशागात्क स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥ ऋ. मं. १ अ. २२ सू. १६४ मं. १७ ॥

पदार्थः—" जो वत्सम् उत्पन्न हुए मनुष्यादि संसार को (बिभ्रती) धारण करती हुई (गौः) गमन करनेवाली जिस (परेण) परले वा (अवरेण) उरले (पदा) प्राप्त करने वाले गमनरूप चरणसे (अवः) नीचे से (उदस्थात्) उठती है (एना) इससे (परः) पीछे से उठती है जो (यूथे) समूह के (अन्तः) बीचमें (कम्, स्वित्) किसी को (अर्द्धम्) आधा (सूते) उत्पन्न करती है (सा) वह (कद्रीची) अप्रत्यक्ष गमन करने वाली (क, स्वित्) किसी में (नहि) नहीं (परा, अगात्) पर को लौट जाती । "

भावार्थः—"यह पृथिवी सूर्य से नीचे ऊपर और ऊपर दक्षिण को जाती है इसकी गति विद्वानों के विना न देखी जाती इससे परले आधे भागमें सदा अन्धकार और उरले आधे भाग में प्रकाश वर्त्तमान है बीचमें सब पदार्थ वर्तमान हैं सो यह पृथिवी माता के तुल्य सबकी रक्षा करती है। "

इस मंत्रसे पृथिवी का भली प्रकार सूर्य के इर्द गिर्द घूमना सिद्ध होता है तथा अर्ध भागमें जो सूर्य सन्मुख होता है दिन का होनाभी सिद्ध है। मंत्र में गौ शब्द के अर्थ जो ऋषि दयानन्द ने किये हैं वह सर्वथा पुराने ऋषियोंके अर्थोंसे

मिलते हैं कारण कि वैदिक निघंटुके प्रथम अध्याय में पृथिवी के जो इक्कीस नाम दिये हैं उनमें पहिली संख्यामें **गौः** शब्द आया है।

युक्ता माता सीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९॥

पदार्थः—जो (गर्भः) ग्रहण करने के योग्य पदार्थ (वृजनीषु) वर्जनीय कक्षाओं में (अन्तः) भीतर (अतिष्ठत्) स्थिर होता है है जिस के (दक्षिणायाः) दाहिनी (धुरि) धारण करनेवाली धुरी में (माता) पृथिवी (युक्ता) जड़ी हुई (आसीत्) है। और (वत्सः) बछड़ा (गाम्) गौ को जैसे वैसे (अमीमेत) प्रक्षेप करता है तथा (त्रिषु) तीन (योजनेषु) बंधनों में (विश्वरूप्यम्) अनुकूलता से देखता है वह पदार्थ विद्या जानने को योग्य है ॥ ९ ॥

भावार्थः—जैसे गर्भरूप मेघ चलते हुए बादलों में विराजमान् हैं वैसे सब को मान्य देनेवाली भूमि अकर्षणों में युक्त है जैसे बछडा गौ के पीछे जाता है वैसे यह भूमि सूर्य का अनुभ्रमण करती है जिस में समस्त सुफेद, हरे, पीले, लाल आदि रूप हैं वही सबका पालना करने वाली है ॥ ९ ॥

इस मंत्रसे भू आकर्षण अति उत्तमता से सिद्ध हो रहा है।

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।

यजु. अ. ३३ मंत्र. ४३

"हे मनुष्यो! जो (ज्योतिः स्वरूप) रमणीय स्वरूप से (कृष्णेन) आकर्षण से परस्पर सम्बद्ध (रजसा) लोकमात्र के साथ (आ, वर्तमानः) अपने भ्रमणकी आवृत्ति करता हुआ (भुवनानि) सब लोकों को (पश्यन्) दिखाता हुआ (देवः) प्रकाशमान (सविता) सूर्य्यदेव (अमृतम्) जल वा अविनाशी आकाशादि (च) और (मर्त्यम्) मरणधर्मी प्राणिमात्र को (निवेशयन्) अपने अपने प्रदेश में स्थापित करता हुआ (आ, याति) उदयास्त समय में आता जाता है सो ईश्वर का बनाया सूर्य्य लोक है। ४३॥"

इससे सूर्य का आकर्षण अति उत्तम रूप से सिद्ध होता है।

(१) **पृथिवी गोल** है कारणकि चन्द्रग्रहण के समय इसकी जो छाया ग्रहण रूप में चन्द्र पर दृष्टि पडती है वह गोलाकार अर्थात् धनुष्य जैसी होती है।

(२) नावकलोग जब किसी बडे समुद्र में जलयान को ले जाते हैं वह जलयान का मुख पल्टे बिना सब सागरों की यात्रा करलेने पर उसी बंदर पर अन्तको आ जाते हैं जहां से वह रवाना होते हैं। इससे भूसागर-तथा भूमि गोल ही सिद्ध होती है।

(३) **इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः अयँ सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम** ॥ (यजु. अ. २३ मं. ६२)

पदार्थः—हे जिज्ञासु जन (इयम्) यह (वेदिः) मध्यरेखा

(पृथिव्याः) भूमिके (परः) परभागकी (अन्तः) सीमा है (अयम्) यह प्रत्यक्ष गुणोंवाला (यज्ञः) सबको पूजनीय जगदीश्वर (भुवनस्य) संसार की (नाभिः) नियत स्थिति का बन्धक है (अयम्) यह (सोमः) औषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम (वृष्णः) पराक्रमकर्त्ता (अश्वस्य) बलवान् जनका (रेतः) पराक्रम है और (अयम्) यह (ब्रह्म) चारों वेदका ज्ञाता (वाचः) तीन वेदरूप वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) स्थान है तू इसको जान ॥ "

भावार्थः—" हे मनुष्यो जो इस भूगोल की मध्यस्थ रेखा की जावे तो वह ऊपर से भूमि के अन्त को प्राप्त होती हुई **व्यास** संज्ञक होती है यहा भूमि की सीमा है। सब लोकों के मध्य आकर्षण कर्त्ता जगदीश्वर है सब प्राणियों का पराक्रम कर्त्ता ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम है और वेदपारग पुरुष वाणी का पारगन्ता है यह तुम जानो। "

इसी मंत्र पर ऋषि दयानन्दने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका नामी ग्रन्थमें जो भाष्य किया है वह इस प्रकार है (देखो पृष्ठ १४०).

" एवं पृथिव्याः परोऽन्तो योभागोर्थात्सर्वतः सूत्रवेष्टनवदस्ति सपरिधिरित्युच्यते। यश्चायंयज्ञोहि संगमनीयो रेखागणिते मध्यो व्यासाख्यो मध्यरेखाख्यश्च सोयं भुवनस्य ब्रह्मांडस्य वा नाभिरस्ति। '

" पृथिवी का जो चारों ओर घेरा है उसको परिधि और ऊपर से अन्ततक जो पृथिवी की रेखा है उस को व्यास कहते हैं"।

उक्त ऋषि भाष्य का सार यह है कि इस मंत्र में पृथिवी के व्यास का वर्णन है और व्यास सदैव गोल वस्तु अथवा परिधिवाले आकारका होता है। इसलिये अर्थापत्ति से इस मंत्र से पृथिवी का गोलाकार होना सिद्ध है। आप्टेकृत संस्कृत कोश में वेद के **भुवन** शब्दका अर्थ " World " अर्थात् **लोक** मिलता है, और लोक से चन्द्र सूर्य आदि सब लोक ग्रहण होते हैं। और वह गोल हैं इसलियेभी पृथिवी गोल हुई। श्रीयुत् **निरुक्तरत्न** पंडित **जगन्नाथजी** अमृतसरी वेदि के दूसरे भौतिक अर्थ यज्ञ मंडप करते हैं, उसदशा में यज्ञस्थल पृथिवी की नाभि समझी जायगी, उससे भी पृथिवी का गोल होना सिद्ध होता है।

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम्॥

(यजुर्वेद अध्याय ३१ मंत्र १५)

" परिधिर्हि गोलस्योपरि भागस्य यावता सूत्रेण परिवेष्टनं भवतिस परिधिर्ज्ञेयः। " (ऋ. भूमिका)

उक्त संस्कृत वाक्य में ऋषि दयानंद ने वेद मंत्र में आये हुये परिधि शब्द का उत्तम लक्षण कर दिया, इस का भाव यह है कि गोलाकार वस्तुके गोल घेरेका नाम परिधि है। अंगरेजी भाषा में

इस को Circumference कहते हैं। मूल मंत्र में सप्त परिधि शब्द जो आया है, वह अति उत्तम रीति से पृथिवी के गोल होने का बोधन करा रहा है। गोल वस्तु के ढकने या परदे सदैव गोलाकार ही होते हैं और एक ढकना जो मेघाकार है वह सबको गोलही दृष्टि पड़ता है। इसलिये मंत्र से पृथिवी का गोल होना पूर्णतया सिद्ध हो रहा है। यूरपके ज्योतिषी तथा विद्वान् अपने दूरबीनों के आधार से अन्य लोक लोकान्तरों के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सके। पर यह वेद मंत्र किस उत्तमता से इस बात का विज्ञान हमें दे रहा है कि इस पृथिवी समान वहां भी सप्त परिधि समुद्र, त्रसरेणु, मेघमंडलस्थ वायु, वृष्टि जल ऊपरीय वायु, धनञ्जय नामी सूक्ष्म और सातवें अत्यन्त सूक्ष्म सूत्रआत्मा वायु हैं।

युरपके विद्वान् लोक लोकान्तरों में मनुष्यादि प्राणी बसते हैं इस का निश्चयरूप से उत्तर आज तक नहीं दे सके, किन्तु यह मंत्र जो त्रिसप्त अर्थात् इक्कीस प्रकार की सब लोकों में सामग्री का होना बतलाता है वह निश्चय रूप से दर्शा रहा है कि वहां मनुष्यादि की सृष्टि है। ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में ऋषि दयानंद ने निम्न प्रकार यह सामग्री गिनाई है। (१) प्रथम अत्यन्त सूक्ष्म होने से प्रकृति बुद्धि तत्त्व और जीव (२) श्रोत्र (३) त्वचा (४) नेत्र (५) जिव्हा (६) नासिका (७) वाक (८) पग (९) हाथ (१०) गुदा (११) उपस्थ (१२) शब्द (१३) स्पर्श (१४) रूप

(१५) रस (१६) गंध (१७) पृथिवी (१८) जल (१९) अग्नि (२०) वायु (२१) आकाश।

बंबई प्रान्त के सर्व सरकारी पाठशालाओं में गुजरातीकी जो सप्तम पुस्तक पढाई जाती है उस में से निम्न वाक्य अप्रासंगिक न होंगे।

"ऋग्वेदमां केटलुंक वर्णन छे, ते परथी जणाय छे के चन्द्रनी गतिने अनुसरीने हिंदुओए वर्षना बार मास कर्या हता, अने ते वर्षने सूर्यनी गतिथी थता वर्ष साथे बंध बेसतुं करवा माटे तेमां अधिक मास उमेरता हता। यज्ञ जेवा धर्मकार्यने अर्थे हिंदुओ आकाशनुं निरीक्षण करता। ऋग्वेदना दशमां मंडळमां केटलांक नक्षत्रनां नाम छे। लांबा यज्ञ के सत्र क्यारे आरंभवां अने क्यारे समाप्त करवां, ते जाणवा माटे आकाशनुं अवलोकन जरुरनुं हतुं। दक्षिणायनमां कोई पण सत्रनो आरंभ थई शकतो नहि; केमके ए काळ देवकार्य माटे अशुभ गणातो। सूर्यनी गतिने अनुसरीने सत्र सामान्य रीते एक वर्ष पहोंचतुं। तेना बे विभाग हता, अने दरेक छ मास चालतो। बेनी वच्चेनो मध्य दिवस विषुव कहेवातो। प्रथम हिंदु ज्योतिःशास्त्री **आर्यभट्ट** हतो. तेणे आर्यभट्टीय नामनो ग्रंथ रच्यो. ए ग्रंथमां तेणे पृथ्वीनी दैनिक गतिनुं विवरण कर्युं छे। ते कहे छे के जेवी रीते आपणे वहाणमां बेठा होईये, अने वहाण+ चालतुं होय ते वखते

+ जहाज़

आपणने स्थिर पदार्थो उलटी दिशामां चालता मालम पडे छे, तेवीज रीते तारा स्थिर छे, तोपण दररोज फरता मालम पडे छे। सूर्य अने चन्द्रग्रहण विषे तेणे खरी शोध करी हती, तेमज पृथ्वीनो परिध ३,३०० योजन छे ए तेनी गणतरी लगभग खरी छे। वराहमिहिर ए बीजा प्राचीन प्रसिद्ध ज्योतिःशास्त्रीए बृहत्संहिता नामे ग्रंथ रच्यो छे। तेमां सूर्य, चन्द्र पृथ्वी वगेरे ग्रहो, वरसाद पवन धरतीकंप, हिंदनी भूगोळ वगेरे अनेक विषयोनुं विवेचन कर्युं छे. त्यार पछी ब्रह्मगुप्ते ब्रह्मसिद्धान्त नामनुं खगोळ विषे पुस्तक रच्युं। एना पछी प्रसिद्ध ज्योतिःशास्त्री **भास्कराचार्य** थयो।

भारतवर्षनुं भूषण भास्कराचार्य सह्याद्रिनी पासे बिज्जडविड नामे एक गाममां शके १०३६ एटले इ. स. १११४ मां जन्म्यो हतो. ए गामथी अग्नि कोणमां आशरे १०० माईल उपर कल्याण नामे शहेर हतुं. तेमां विज्जल नामे जैन राजा राज्य करतो हतो। ते राजा अने भास्कराचार्य समकालीन हता, एम एक लेख परथी जणाय छे। ए वैष्णव हतो एम एना ग्रंथ परथी समजाय छे। एणे घणा यज्ञो कर्या हता। एना पितानुं नाम महेश्वर हतुं। ते तेना वखतना सर्वे जोशीओमां श्रेष्ठ हतो। एनो पिताज एनो गुरू हतो, एम एना बीजगणितना छेल्ला श्लोक उपरथी जणाय छे। एणे सिद्धांत शिरोमणि नामनो ग्रंथ रच्यो छे। ए ग्रंथ एणे ३६ वर्षनी वये रच्यो। एना चार अध्याय छे। प्रथम अध्याय लीलावतीमां अंकगणितनो विषय

छे, एने गणितपाटी पण कहे छे। एनी पूर्वे थई गयेला श्रीधराचार्यना गणितसारने अनुसरी एणे ए ग्रंथ बनाव्यो। लीलावती ग्रंथ पर घणी टीकाओ संस्कृतमां छे ए ग्रंथनुं भाषान्तर आपणा देशनी अने युरोपनी घणी खरी भाषाओमां थयुं छे।

सिद्धांत शिरोमणिना बीजा अध्यायमां बीजगणित अथवा अक्षरगणितनो विषय छे। ए बीजगणित नामथी प्रसिद्ध छे। भूमितिना सिद्धांत बीजगणितनी रीते प्रथम सिद्धकरी बतावबानुं मान भास्कराचार्यने घटे छे। गणिताध्याय अने गोलाध्याय ए ग्रंथना छेल्ला बे अध्याय छे। एमां खगोलविद्यानो विषय छे। ए भाग एटलो पूर्ण छे के तेमांनी गणित पद्धति हाल पश्चिम तरफना देशोना ज्योतिष ग्रंथोमांनी पद्धतिने संपूर्ण रीते मळती आवे छे। ए बन्ने अध्याय पर भास्कराचार्ये पोते टीका लखी छे। गोलाध्यायना एक भागमां आकाशनी निरीक्षा करवा माटे जुदां जुदां यंत्रो शी रीते बनाववां तेनुं निरूपण छे। भास्करना समयमां लल्ल नामना गणित शास्त्रीना सिद्धान्तोनो अभ्यास करवानो चाल हतो भास्कराचार्ये सिद्धांतशिरोमणि रच्यो, अने तेमां लल्लना मतनुं खंडन कर्युं छे। ६९ वर्षनी उमरे भास्करे करणकुतूहल नामे ग्रंथ रच्यो। ते उपरथी समजाय छे, के घडपणमां पण एनी स्मरण शक्ति सारी हती। ए जेवो ज्योतीषमां निपुण हतो तेवो उत्तम कवि पण हतो। आ आचार्य पछी गणेशदैवज्ञ सिवाय बीजो कोई समर्थ जोशी हिन्दुस्थानमां थयो नथी."

काल विभाग

यजुर्वेद अ. २२ के मंत्र २८ में नक्षत्र, अहोरात्र, अर्द्धमास (शुक्ल कृष्ण पक्ष), मास, ऋतु, संवत्सर, (वर्ष), आदि का वर्णन है। वेदभाष्य को पढ़नेसे पाठक स्वयं अनेक मंत्र प्रत्येक विषय संबंधी देख सकते हैं यहां तो प्रसंग वशात् दिग् दर्शन मात्रही करा सकते हैं इससे अधिक नहीं।

मंत्रका भावार्थ

१. सूर्य्योदय की दिशा की, गति स्वरूप, शक्ति मुख्य रक्षक (और)

२. कृष्ण रंग, रक्षक है, (तथा)

३. सूर्य्य किरणेंबान् (वत्) हैं।

४. इन शक्तियों के गुण कर्म के हम अनुकूल चलें और द्वेषियों के द्वेष को अपने महान् बलसे सहन कर सकें

मनु स्मृ. अ. ५ के १०७ में श्लोक में महर्षि मनुजी ने कहा कि **क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो......................**

(अर्थ) क्षमा (सहनशीलता) से विद्वान् शुद्ध होते हैं।

यह वही तत्व है जो इस मंत्र के अन्तिम भाग में मिलता है। किसी विद्वान् समाज को लो उनके नेताओं के कारण उनमें दलबन्दी पाई जाएगी। यह दलबन्दी सामाजिक जीवन के लिए हानिकारक है। इसकी निवृत्तिका उपाय एक मात्र यही है कि

मंडलियों के विद्वान् नेता परस्पर वैर लेने अथवा एक दूसरे को नीचा दिखाने के भाव तज कर क्षमा अथवा सहनशीलता को व्यवहार में सिद्ध कर दिखावें ।

हम प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर पूर्वलेख में कहीं दर्शा चुके हैं कि प्रातःकाल पक्षी सूर्य के गति स्वरूप प्रकाश के कारण जागते हैं । इस लेख को समाप्त करने से पूर्व हमें "दी बुकऑफ नॉलेज" के दैनिक स्वाध्याय में निम्न वचन मिले जिससे पाठकगण जान सकेंगे कि पश्चिम के एक विद्वान् का भी यही विचार है । उक्त ग्रन्थ के भाग १३ में वह लिखते हैं कि:-

"......it is perfectly true that it is the light which wakes the birds, just as it is the dark that sends them to sleep. We know that during total eclipse of the Sun, when it gets dark in the day time, the birds fold their wings and start to go to sleep."

(अर्थ) "........यह सर्वथा सत्य है कि यह **प्रकाश** ही है जो पक्षियों को जगाता है, और ठकि यह अन्धकार ही है जो उन को सोने के लिये भेजता है । हम जानते हैं कि पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय, जब दिन में अन्धकार छा जाता है तो पक्षी अपने परोंको सकोड लेते और सोनेकी तैय्यारी करते हैं ।"

दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजीरक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

महाशय एच. इ. हेडले, बी. एससी कृत मेग्नेटिज़्म × एन्ड इलेक्ट्रिसिटी (चुम्बक शक्ति तथा विद्युत्) नामी प्रसिद्ध ग्रन्थ में Aurora (आरोरा ध्रुवीय विद्युत् प्रकाश) का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह आरोरा का दृश्य "बहुधा उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुव प्रदेशों में देखने में आता है, और लाल अथवा हरित पीले रंगों वाले पक्षियों के परों के आकार वाले बादलों के समूह से ढक कर विस्तार पाता है। यह बादल एक केन्द्रसे जो कि चुंबक शक्ति मय ध्रुव स्थलके मार्ग में होता है यह किरणें बढ़ती और घटती हैं। इनकी चमक बढ़ती, लोप होती और पुनः प्रकाशित होती है। आरोरा की प्रकाश गति और विद्युत् निकल कर बाहर फैले हुए होते हैं प्रस्तार में अत्यंत साम्यपन है। यह बात दर्शाती है कि यह दृश्य विद्युतमय है और वायु के उच्चतर मंडलों में होता है। आरोरा (ध्रुवीय विद्युत् प्रकाश) के साथ साथ चुंबक शक्ति युक्त तुफान आते हैं।"

"संदेश वाहक बिजली की तारों पर नैसर्गिक विद्युत्

× Magnetism & Electricity by H. E. Hadley BSc.

प्रवाहका जो पृथिवी से संबंध रखती हैं भारी प्रभाव पडता है और यह प्रभाव उन संदेश वाहक विद्युतस्तूपों तारों पर बहुधा भारी होता है जो कि **उत्तरीय और दक्षिणी ध्रुवकी सीधमें होती हैं।** "

इसी पुस्तकके पृष्ठ दो पर लिखा है कि किसी धात को चुंबक शक्ति से युक्त करने के लिए तीन उपाय हैं (प्रथम) यह कि उसका एक बार स्पर्शन करना (द्वितीय) उसको बार बार स्पर्शन कराना और (तृतीय) विद्युत् प्रवाह द्वारा। यह भी लिखा है कि पोलाद के छोटे छोटे टुकडे जैसे कि सीने की सुइएं आदि हैं उनके लिए तो पहले दो प्रकार उपयुक्त हो सकते हैं परंतु विद्युत् प्रवाह द्वारा बडे बडे टुकडे चुंबक शक्ति से युक्त किये जा सकते हैं।

इस पुस्तकके पाठसे यह बात भली प्रकार विदित होजाती है कि चुंबक शक्ति एक प्रकारकी विद्युत् शक्ति है। आकर्षण और विकर्षणसे इसकी पहचान होती है।

Medical Science of Today (मेडिकल सायंस आफ टु डे) नामी ग्रन्थ में लिखा है कि " It is now recognised that the source of all magnetism is electricity. " अर्थात् यह बात अब मानी गई है कि सर्व प्रकारके चुंबक शक्तिका स्रोत विद्युत् है।

इसी पुस्तकमें लिखा है कि युनान और रोमवालों को चुंबक शक्तिका ज्ञान था। ईस्वी सन् से पूर्व बाहरवीं शताब्दी तक कम्पस (ध्रुव सूची) का प्रयोग युरोपमें होता था। चीन और जापान में इस से भी बहुत पूर्व कम्पससे लोग काम लेते थे और चीनी लोग यंत्र की सुई के स्थान परिवर्तन के क्रमसे विज्ञ थे। मसी साहब के जन्मसे आठसौ वर्ष पूर्व यूनानी लोगों को लोह चुंबककी आकर्षण शक्ति का ज्ञान था।

·|· महाभारत में वर्णन है कि गोलियां लोहे की, चुंबकसे निकालते थे। उक्त ग्रन्थ में लिखा है कि " वायु मण्डल का विद्युत दोनों ध्रुवों का आरोरा प्रकाश तथा चुंबक आकर्षण यह सब विद्युत रूप हैं। "

आठ वर्ष हुए अर्थात् संवत १९७० विक्रमी में जब पहिलीवार * **संस्कार चन्द्रिका** प्रकाशित की थी तब उसके विवाह प्रकरण की व्याख्या में एन्ड्रो जेक्सन डेविस (Andrew Jackson Davis) अमेरिका के प्रसिद्ध योगी तथा डाक्टर के वचनाधारसे लिखा था कि उत्तरीय और पूर्वीय दो दिशाएं Positive (तेज प्रधान) और दक्षिण तथा पश्चिम यह दो दिशाएं Negative (अतेजस्वी) हैं। इस स्थलपर यह लिखना जरूरी है कि उक्त

·|· महाभारत के युद्धको हुए पांच हजार से अधिक वर्ष होते हैं। (ग्रन्थकर्ता)

* **संस्कार चन्द्रिका** (पृष्ठ ६९ तथा ६१८ तृतीयावृति) मू० ३॥) प्रकाशक जयदेव ब्रदर्स बड़ौदा.

डेविस महोदयने अपनी पुस्तकों में इस बात को लिखा है कि दक्षिण दिशाके ध्रुव प्रदेश में Negative विद्युत की प्रधानता रहती है और उत्तरीय ध्रुवमें Positive विद्युत प्रधान है।" पूर्वीयआर्यों में एक रिवाज है कि वह किसी को उत्तरीय तथा दक्षिणीय ध्रुवकी रेखा में सोने नहीं देते। इसका कारण यह हो सकता है, कि उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुव के मार्ग की सीध में जो विद्युत प्रवाह चल रहा है वह मनुष्य के सिरसे, उसकी विद्युत को खेंचकर घटाने में प्रभाव डाल सकता है।

पश्चिमी पदार्थ विज्ञान के प्रमाणों से यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि उत्तर दिशा में विद्युतमय चुंबकशक्तिका और दक्षिण दिशा में विद्युत का सचमुच राज्य है।

यहां हमें **इन्द्र** शब्द संबंधी विचार करना होगा। विदित हो कि **इदि परमेश्वर्ये** और **इन्धी–दीप्तौ** दोनों धातुओंसे **इन्द्र** शब्द बनता है। प्रथमका अर्थ **ऐश्वर्यवान्** होना और दूसरे का **प्रकाश करना** है।

इन्द्र के दूसरे अर्थ विद्युत् हैं, वह उसके दूसरे धात्विक अर्थ से निकलते हैं, कारण कि विद्युत् बडी दीप्तिवान् होती है। **निरुक्त** के दैवतकाण्ड में जहां **विष्णु** शब्द की निरुक्ति महर्षि यास्काचार्य्यजी ने की है वहां पर **इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्** (यजु. अ. ५ मं. १५) इत्यादि वेद मंत्र में आये हुए

गूढ शब्दों को खूब खोला गया है। उसी पृष्ठ पर निरुक्त के सुप्रसिद्ध भाष्यकार **श्री दुर्गाचार्य्यजी** ने निम्न पंक्तिएं लिखी हैं:—

"पार्थिवोऽग्निर्भूत्वा पृथिव्यां यत्किंचिदस्ति तद्विक्रमते, तदधितिष्ठति, अन्तरिक्षे विद्युदात्मना, दिवि सूर्यात्मना ...." "....समूलहमस्य पांसुरे।" अस्मिन् "प्यायने" एतस्मिन् "अन्तरिक्षे" सर्व भूत वृद्धिहेतौ यन्मध्यन्दिनं "पदम" विद्युदाख्यम् तत् "समूलहम्" अन्तर्हितं "न" नित्यं "दृश्यते"। निरुक्तकार लिखते हैं कि **अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्योद्युस्थानः॥** इस पर श्री दुर्गाचार्य्यजी लिखते हैं कि "कस्मात् पुनर्मध्यमस्य शब्दद्वये-नोपदेशः क्रियते, पार्थिवोत्तमयो रेकैकेन? इति। मध्यमस्यहि द्वौकर्मात्मानौ विद्युद्वाय्वाख्यौ। तयोरनित्यदर्शन एको विद्युदाख्यः, नित्यदर्शनस्तु वाय्वाख्यः त्वगिन्द्रिय प्रत्यक्षः।"

इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्य ध्वरे। इन्द्रं सोमस्य पीतये॥ ऋ. मं. १ अ. ४ सू. १६ मं. ३॥

महर्षि दयानन्दजी अपने वेदभाष्य में इन्द्र शब्दसंबंधी इस प्रकार लिखते हैं "प्रतिदिनमिन्द्रं विद्युदाख्यमग्निं हवामहे।" अर्थात् "(इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य साधक विद्युत् अग्नि को। (हवामहे) क्रियाओं में उपदेश कह सुनके संयुक्त करें।"

अभिसिध्यो........संवज्रेणासृजद्वृत्र मिन्द्रः प्रस्वां मति मतिरिच्छाशदानः॥ ऋ. मं. १ अ. ७ सू. ३३ मं. १३।

इस पर महर्षि दयानन्दजी भावार्थ में लिखते हैं :— " यथा विद्युन्मेघावयवांस्तीक्ष्ण वेगेन घनाकारं मेघं च छित्त्वा भूमौ निपात्यज्ञापयति......."

" जैसे बिजली मेघ के अवयव बादलों को तीक्ष्ण वेगसे छिन्नभिन्न और भूमि में गिराकर वश में करती है ।"

इन्द्रवायू वृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् ।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ऋ. मं. १ अ. ४ सू. १४ मं. ३ ॥

" (इन्द्रवायू) इन्द्रश्च वायुश्चतौ विद्युत्पवनौ ।"

"हे (कण्वाः) बुद्धिमान् विद्वान् लोगो आप क्रिया तथा आनंद की सिद्धि के लिए (इन्द्रवायू) बिजली और पवन ।"

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥
ऋ. मं. १ अ. ४ सू. १७ मं. ५

"(इन्द्रः) ' अग्निर्विद्युत् सूर्य्योवा ।' * (इन्द्रः) अग्नि बिजली और सूर्य **इन्द्र वायू मनो जुवा**....ऋ. मं. १ अ. ५ सू. २३ मं. ३ " (इन्द्रवायू) विद्युत्पवनौ" * । विद्युत् और पवन उक्त प्रमाणों के आधार से यह बात निर्विवाद सिद्धहो गई कि इन्द्र शब्द के अर्थ प्रसंगानुसार विद्युत् के हैं । हम युरोप के पदार्थ विज्ञानियों की सर्व सम्मति से यह बात दर्शा चुके हैं कि **दक्षिण दिशा में विद्युत् का राज्य है** । इसी भावको वेद मंत्र में इस प्रकार कहागया है कि **दक्षिण** दिशा का

---

* देखो ऋग्वेद भाष्य ।

स्वामी इन्द्र (विद्युत्) है। अबहम तिरश्चिराजी के अर्थ दर्शाना चाहते हैं। गुरुकुल बंबई के आचार्य वेदज्ञ पंडित मयाशंकरजी शर्म्मा शास्त्री द्वारा विदित हुवा है कि शतपथ ब्राह्मण में इन्द्रशब्द परोक्षाग्नि अर्थ में लिया गया है। वास्तव में परोक्षाग्नि विद्युत् का दूसरा नाम है।

इन्द्रशब्द के विषय में शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार लिखा है:-" सयोऽयं मध्ये प्राण:। एष एव इन्द्र: तानेष प्राणान् मध्यत इन्द्रियेणैन्द्ध, यद ऐन्द्ध तस्मादिन्धइन्धो ह वै तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षं परोक्षकामा हि देवा:।"

इस में बताया है कि इन्ध को ही इन्द्र कहते हैं। इन्ध का अर्थ दीप्तिमान् होना। इस अर्थ को इन्द्र नाम देकर परोक्ष कर दिया है। शतपथ काण्ड ६, ब्रा. १. कं. २.॥

(**तिरश्चिराजी**) तिरछा प्रकाश वा तिरछी किरणों से प्रकाशित होने वाला सूर्य्य रक्षक है।

जिस समय सूर्य्य अपने प्रकाश की उन्नति कर चुकता है उस समय दिन के १२ बजते हैं। उसकाल के पीछे सूर्य्य की किरणें ढलनी आरंभ हो जाती हैं। जिन लोगों के पास धूप घडी नहीं, वह एक सीधे डंडे वा तिन के को १२ बजे सूर्य्य की धूपमें रख कर, उस बिन्दु वा सीमा पर कोई चिन्ह करदें, जहां पर सूर्य्य की छाया पड़ती हो। कुछ मिनटों के पीछे छाया को बढी हुई अर्थात् लंबी पाएंगें। यह बात बतला

रही है कि सूर्य्य की किरणें **तिरछी** होगईं और अब छाया बढने से सूर्य्य के ताप और प्रकाशका **बल क्षीण** होना आरंभ हो चला उस समय छाया का मुख **उत्तर दिशा** की तरफ होने लग जाता है। इस का मतलब यह कि स्वयं सूर्य **दक्षिण दिशामें** आगया।

दक्षिण दिशा के जानने का एक वैज्ञानिक हेतु विद्युत की प्रधानता हम उपर बता चुके हैं। अब दूसरा हेतु सूर्य्य प्रकाश का तिरछा होना है। गरमी की ऋतु में इस समय प्रत्येक मनुष्य के शिरमें अधिक गरमी हो जाने से तमोगुणका प्रभाव निद्रारूप में प्रत्यक्ष हो जाता है। एकाग्र चित्त होकर विचार वा चिन्तन करने का यह समय नहीं है।

सबको जानना चाहिये कि यह समय ईश्वर वा सृष्टि नियमों ने संध्या के लिए बनाया ही नहीं। आयुर्वेद के ज्ञाता वैद्य कहते हैं कि जब दिन के बारह बजते हैं उस समय **पित्त** (गरमी) अपनी उच्चतम अवधि पर होता है और इसी लिए १० से १२ बजे तक भोजन करने का उत्तम समय आयुर्वेद तथा सृष्टि नियमानुसार हैं।

सुप्रसिद्ध प्रोफेसर बेन एम.ए.एलएल. डी. * अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मन और शरीर में लिखते हैं कि प्रातःकाल का समयही उत्तम तथा गहन विचारों के लिए है।

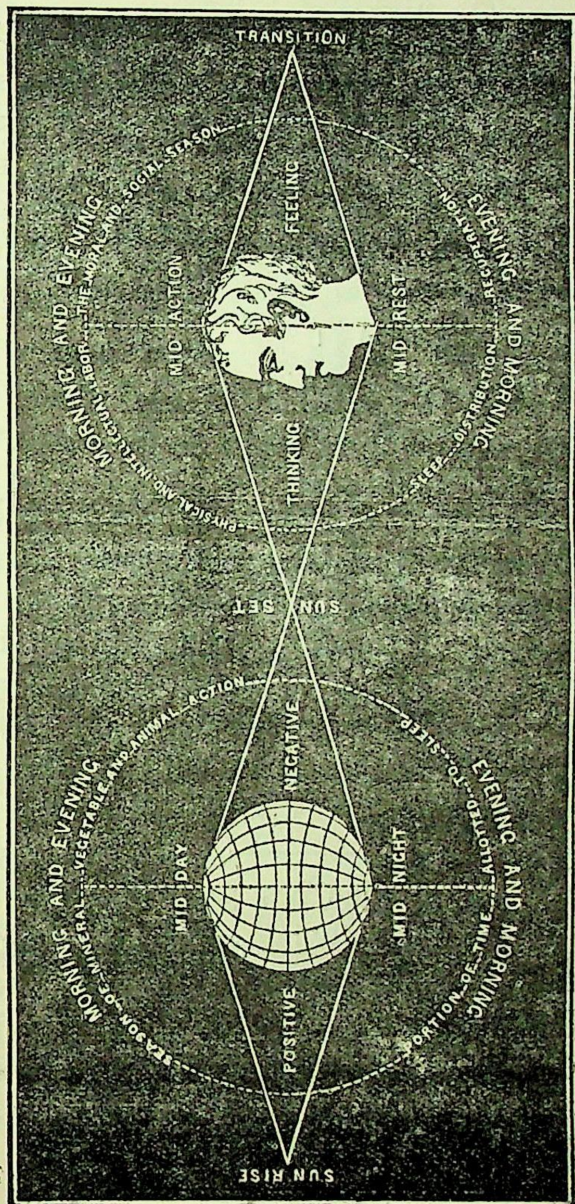
जहां सूर्य्य के उदयकाल में पक्षीगण इधर उधर वेग से

*"Mind and Body" by Alexander Bain, M. A. LL. D.

उडते थे अब दो प्रहर समाप्त होते ही कुछ काल विश्राम लेनेको वृक्षों में बैठ गये। दफतरों में बैठे हुए बाबू वा लेखक लिखते हुए झोंकें खाने लगते हैं।

अमेरिका के नामी योगी तथा डाक्टर एन्ड्रोजैक्सन डेविस जिसको महात्मा मुनिवर पंडित गुरुदत्त एम. ए. योगी मानकर उसके ग्रन्थों का पात्रों में प्रचार करते रहे वह भी इस विषय पर निम्न वाक्य अपने ग्रन्थ में लिखते हैं। उन्होंने एक चित्र भी दिया है उसका अनुरूप पाठकों के लिए यहां पर दिया जाता है। उनका मूल लेख यह है:—

"The twilight hour-being the interlude between the states of action and rest is the properest season for reverential meditation. This is the time to disengage yourselves from the outer world of objects. The man of genius devotes this season to himself, and withdraws from outer things for the sake of contemplation...... The mind is in its finest mood at the twilight hour, when the front brain is not surcharged with either blood or thought. But the case is quite different with the Brain when the Sun sends down its rays to earth. The heat and light thereof render the cerebrum positive—fill it with blood, and prevent it, to a great extent, from exercising its powers of imagination.


TRANSITION
FEELING
THINKING
MID ACTION
MID REST
MORNING AND EVENING
THE MORAL AND SOCIAL SEASON
PHYSICAL AND INTELLECTUAL LABOR
EVENING AND MORNING
RECUPERATION
DISTRIBUTION
SLEEP
SUN SET
NEGATIVE
POSITIVE
MID DAY
MID NIGHT
MORNING AND EVENING
SEASON OF MINERAL, VEGETABLE AND ANIMAL ACTION
EVENING AND MORNING
PORTION OF TIME ALLOTTED TO SLEEP
SUN RISE

चित्रव्याख्या (क) प्रथम भूगोल जैसे चित्रकी व्याख्या:—इस में मुख्य बात दर्शाई गई है कि **प्रातःकाल से सायंकाल** समय के अंतर्गत खनिज, वनस्पति और पशु क्रिया करने की मानो ऋतु है। इस काल में सूर्योदय, दो प्रहर और सूर्यास्त का समावेश समझो। अर्धरात्रि से आरंभ होकर सूर्योदय तथा दो प्रहर तक का जो समय है उस में Positive अर्थात् सतोगुण अथवा तेज प्रधान विद्युत् का राज्य रहता है। दो प्रहर से लेकर सूर्यास्त तक Negative अर्थात् राय विद्युत् का भूगोल पर राज्य आरंभ होकर अर्ध रात्रितक वृद्धि सीमा को प्राप्त होता है।

सूर्योदय तथा सूर्यास्त के केवल दो काल ऐसे हैं, जब कि दोनों प्रकार की विद्युत् आपस में **मिल जाती हैं** और समता का राज्य इन दोनों कालों में हो जाता है।

(ख) दूसरे मानवी चित्र में मानवी कपाल को भूगोल से उपमा देते हुए दर्शाया है कि प्रातःकालसे सायंकाल का समय शारीरिक मानसिक परिश्रम नैतिक और सामाजिक व्यवहारों के लिए है। मनुष्य के अगले अर्ध कपाल में ज्ञान संबंधी करण कपाल के अन्दर रहते हैं। कपाल के पिछले भाग में उत्साह आवेश और प्रेम आदि की वृत्तियों के करण रहते हैं। सांझ से प्रातःकाल तक, मानवी शरीर को सोने, खाए हुए को पचाने और शारीरिक विकार दूर करने का समय है। सूर्योदय और सूर्यास्त के दोनों कालों में मानवी शिर के अन्दर ज्ञान और कर्म्म संबंधी शक्तियों की सन्धि होती है।

But when the Sun has passed away the front Brain is thrown partially into a negative state, thus permitting the higher faculties to play more restrainedly in the empire of thought The mind cannot think as clear when the sun shines as in the twilight hour. Because that portion of the Brain

which controls all agents of superior thought, is the chief ruler of all that takes place in the physical economy. It directs all muscular action, guides the body in the discharge of its voluntary functions and dispenses energy to all the various physical dependencies. Consequently it is too much engrossed with cares of the body to do much thinking; and besides this,--the Sun renders the brain too positive for deep, clear, and pleasurable contemplation. The man of genius glowingly conceives his best thoughts, arranges them with the greatest facility and realizes the most happiness. When the heavens are tranquil and the vesper star is seen above the clouds, when all the vast landscape glimmers on the sight, the mind sees burning thoughts and words so eagle like, that it cannot but be exalted and serene. This is the period for religious contemplations. Because the front brain is less positively charged with blood and nervous energy then and the whole internal being is abandoned to a most luxurious exercise of its various affections and faculties."*

(अर्थ) " दो काल की संध्या का घंटा क्रिया और विश्राम की मध्यवर्ती दशाओं का रूप होने से अत्यंत उत्तम काल गंभीर विचार करने के लिये है। यह वह काल है जब कि तुम्हें अपने आपको बाह्य संसारसे पृथक् करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष यह काल अपने सुधार के लिये उपयुक्त करता और

* Great Harmonia by A. J. Davis.

विचार करने के लिये बाह्य पदार्थों से मनको हटाता है। प्रातः और सायंकाल के समय मन अपनी सबसे स्वास्थ दशा में होता है। इस काल में माथे (शिर के पूर्व भाग) में रक्त वा विचारों की अधिकता नहीं होती। यह सुदशा मस्तिष्क (दिमाग) की नहीं रहती जब कि सूर्य्य अपनी प्रचंड किरणें भूगोलपर भेजने लगता है। सूर्य्य का ताप और प्रकाश उस समय आगे के अर्धकपाल को तेज प्रधान बनाकर उसमें रक्त संचार करा देता है और बहुत करके उसकी चिन्तन करने की शक्तियों के व्यवहार को रोक देता है। फिर जब सूर्य्य अस्त होने का काल आता है तो मस्तिष्क के अगले भागमें तेज की अप्रधानता हो जाती है और इस प्रकार से एकवार फिर उच्च शक्तियों को मर्य्यादा से विचार के साम्राज्यमें क्रीडा करने का समय मिलता है। जितना उत्तम चिन्तन मन दो काल संध्याओं के घंटों में कर सकता है, उतना सूर्य्य के प्रचंड तेज में नहीं कर सकता। कारण यह कि मस्तिष्क का वह भाग जो उच्च विचार के सर्व साधनों का शासक है, वही मुख्य नियंता उन सब क्रियाओं का है जो शारीरिक विभाग में होती हैं। यह पट्ठों के सुकडने फैलने की गति का चालक है तथा इच्छापूर्वक क्रियाओं के पूर्ण करने में शरीर का नेता बनता और नाना प्रकार के शारीरिक उपांगों में बल संचार करता है। अतः यह शरीर के रक्षण में इतना लग जाता है कि बहुत चिन्तन नहीं कर सकता इस के अतिरिक्त सूर्य्य का ताप मस्तिष्क में इतना तेज भर देता है कि गंभीर, निर्मल और आनन्ददायक विचार करने के योग्य नहीं रहता। बुद्धिमान् मनुष्य, अपने उत्तम विचार उत्तमता से धारण कर, उनको अत्यंत सुगमता के साथ व्यवस्थित कर, अत्यंत आनन्द का अनुभव कर सकता है। जब गगन मंडल शान्त हो और सांझ का शुक्र तारा बादलों पर से ऊपर चमक रहा हो, जब कि सर्व महान् भू-दृश्य उज्वल रूप में दृष्टिगत हों तो उस समय मन में प्रकाशमान् विचार और दूरदर्शिता के शब्द भर जाते हैं। ऐसे काल में मन उन्नत और शान्त अवस्था प्राप्त किये विना नहीं रह सकता। धर्म संबंधी तत्वों के विचार करने का यही संधि काल है। कारण कि मस्तिष्क के अगले भाग में तेज रक्त और विद्युत्मय प्राण शक्ति की

अधिकता नहीं होती और सर्व अंतरीय करणों को नाना प्रकार के अनुराग और शक्तियों के व्यवहार का पूर्ण अवसर मिलता है।"

अमृतसर के समीक्षक (रिसर्चस्कालर) **पंडितवर श्री कन्हैयालालजी** का कथन है कि निम्न लिखित मनु. अ. २ श्लोक. १०२ से यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि संध्या दोकाल की होती है। श्लोक में कहा गया है कि प्रातःकाल संध्या से रात्रि के मनोविकार नष्ट होते हैं और सायं सन्ध्या से दिन के।

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनोव्यपोहति।
पश्चिमांतुसमासीनोमलं हन्तिदिवाकृतम् ॥ मनु०॥

(अर्थ) प्रातः संध्या के जप से रात्रि भर की और सायं संध्या से दिन भर की दुर्वासना का नाश होता है।

योगी डेविसने अनेक स्थलों पर अपने ग्रन्थों में लिखा है कि मनुष्य को दो प्रहर तथा उस के उपरान्त शारीरिक श्रम वा ऐसे ऐसे कार्य्य करने चाहियें जिस से पट्ठे दृढ़ हों और शारीरिक उन्नति हो। वह खुले शब्दों में कहते हैं कि अपराह्न काल शारीरिक बल बढाने तथा हास्य विलास आदि का है।

तिरश्चिराजी के होते ही अपराह्न काल का आरंभ होता है। इस अपराह्न काल को पितर शब्द का नाम यहां पर दिया गया है। दक्षिण दिशा से संबंध रखनेवाले अपराह्न काल को बाण की उपमा दी गई है। जो लोग इस अपराह्न काल के

नियमों तथा गुणों को व्यवहार द्वारा नमन नहीं करते, उन को यह बाणवत् दुःख देगा। जो मनुष्य इस समय विचार करने योगाभ्यास करने वा शरीर को पुष्ट सात्विक आहार न दे कर उस से कोई श्रम विशेष नहीं लेगा वह शारीरिक संपत्ति से हाथ धो बैठेगा।

पितर शब्द के अनेक अर्थ हैं, पर यहां पर अपराह्ण क्यों किये गए, इस का शास्त्रीय प्रमाण देते हैं। जब किरणें सूर्य्य की तिरछी होने लगती हैं तबही अपराह्ण काल आरंभ होता है।

मंत्र का शब्दार्थ निम्न प्रकार हैः–(दक्षिणा) दक्षिण (**दिक्**) दिशा का (**इन्द्र**) विद्युत् (**अधिपति**) स्वामी है (**तिरश्चिराजी**) तिरछा प्रकाश वा तिरछी किरणों से प्रकाशित होने वाला सूर्य्य (**रक्षिता**) रक्षण करनेवाला है। (**पितरः**) ऋतुएं तथा अपराह्णकाल (**इषवः**) बाण समान हैं।

पितर के शब्दअर्थ जनक, पालक ऋतु तथा अहोरात्र आदि हैं। यह बातें निम्न लिखित निरुक्त के लेख से प्रगट हैं।

पंच पादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणाम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुर्पितम्॥ (ऋ. मं. १ अ. २२ सू. १६४ मं. १२)

निरुक्त भाष्य के भाष्यकार उक्त मंत्र देकर उस की व्याख्या में लिखते हैं किः–'**पंचपादं**' संवत्सरम्, **ऋतवोहिसंवत्सर-**

स्यपादाः, तैरसौपतति गच्छति । 'पितरं' पालकं सर्वभूतानामुत्पादयितारं वा........'दिवः' द्युलोकस्य 'परे' परमे 'अर्द्धे' स्थाने योऽयमवास्थि आदित्यः, एतस्मिन् पंचपादं पितरं द्वादशाकृतिं ।

(अर्थ) पांच अवयव वाला संवत्सर है पांच अवयव यह हैं। और वह अवयव ऋतु हैं। उनऋतुओं के सहित जो आता जाता है। पितर के अर्थ पालक वा सर्व भूतों को उत्पन्न करनेवाला प्रकाशमय लोक में जो स्थित है वह आदित्य है। इस पांच अवयव ऋतुओं वाले १२ मास के रूपवाला पितर।

पुनश्च

"तस्मिन् साकं त्रिशतान शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चला चलासः" ऋ. सं. २-३-२३,२

"तस्मिन्-चक्रे साकं-सह त्रिशतान न शङ्कवोऽर्पिताः=त्रिशतान्यहोरात्राणि शङ्क व **इवार्पितानि**। षष्टिर्न=षष्टयधिकानि त्रीण्यहोरात्रशतानि शङ्क व इवार्पितानि, प्रक्षिप्तानि। (द्वितीयो नकारः समुच्चयार्थे)।"

(भावार्थ) इस से पिता वा पितर शब्द अहोरात्र का बोधक सिद्ध होता है। **स्वर्गस्थ वेदाचार्य्य पंडित श्री शिवशङ्करजी काव्यतीर्थ** ने श्राद्धनिर्णय के पृष्ठ ६ पर जो शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रमाण 'पितर' शब्द की व्याख्या में दिया है वह निम्न प्रकार है। **अपराह्णः पितरः** अर्थात् अपराह्ण काल पितर है। देखो शतपथ ब्राह्मण का. २ ब्रा. ३.।

युरोप में लोग जब शाम को चार बजे कार्यालयों से घर आते हैं तो कुछ लघु आहार कर या तो टेनिस आदि खेलने लगजाते हैं या किसी विहार (क्लब) में जाकर मन बहलाते हुए कोई क्रीडा रूपी व्यायाम करते हैं। फिर घर में आ खा पीकर बाल वा नृत्यादि में लगते वा बाजेबजाते गाते वा नाटक सिनेमा आदि देखते हैं। युरोप के जिन नगरों में नाटक आदि व्यसन रूप हो गए हैं वहां की प्रजा विलासी हो कर निर्बल हो जाती है। उनके व्यसन और दुर्गुणों को छोड कर प्रत्येक भारत निवासी उन के इस जीवन से एक उपयोगी शिक्षण यह ले सकता है कि दो प्रहर से लेकर एक प्रहर रात का समय, शारीरिक व्यायाम वा शारीरिक श्रम चरखा कातने, घरधंदे करने, क्रीडा, हास्य, विलास, निर्दोष स्वास्थ्यपुष्टिक खानपान, गायन, नृत्य, बच्चों से खेलने उनको कथा कहानी सुनाने आदि का है। एक जनश्रुति है कि पहले प्रहर सब कोई जागे दूसरे प्रहर भोगी, तीसरे प्रहर तस्कर जागे चौथे प्रहर जोगी। इस का मतलब यह है कि साधारण गृहस्थ मनुष्य को तीन घंटे रात तक हास्य विलास गायन नृत्य, गप्प, कथावार्ता आदि के लिए जागना हितकर है।

जो गर्भाधान करें उनके लिये लगभग अर्धरात्रि का समय हितकर है। चोर लोग रात के तीसरे प्रहर में प्रायः चोरी आदि छुपकर करते हैं जब कि सब मनुष्य गहरी निद्रा में सोते हैं। वानप्रस्थ वा संन्यासी आदि ईश्वरभक्त ब्राह्ममुहूर्त के होने पर जाग जाते हैं।

"*Young at Sixty again.* In an American monthly named Physical Culture one writer under the above heading has written an elaboarate article, the gist of which is that he suffered all sorts of ailments upto sixty but when he took to deep breathing as advised by Dr. Bernarr Macfadden the premier Physical Culturist and prescriber of Nature cures he was fresh again. The patient used to practice deep breathing both in the *morning* and *evening* in an open space. This deep breathing was in fact abdominal breathing that is taking and the holding of the breath in the abdominal region-a right form of breathing. He added light exercise of bending and raising the waist with it. Also stretching his arms backwards and forwards."

उक्त लेख का सार यह है कि एक मनुष्य अमेरिका में जो साठ वर्ष की अवस्था तक रोगी रहा **प्रातः** और **सायं** दो कालों में प्राणायाम करने से नीरोग हो गया। उसने यह क्रिया डाक्टर बर्नार मैकफैडन के आदेशानुसार आरंभ की थी। मतलब हमारे लेख का यह है कि जहां **प्रातः** और **सायं** दो काल संध्या (उच्चध्यान) के लिए अमेरिका के डाक्टर और योगी उचित दर्शा रहे हैं उस के साथ दो काल प्राणायाम तथा व्यायाम का करना भी बहुत लाभकारी मान रहे हैं।

चरक सुश्रुत के कर्त्ता परम विद्वान् ऋषियों ने अपने ग्रन्थों

में दर्शाया है कि प्रत्येक दिनरात में सब ऋतुओं का रूप प्रतिदिन जानकर उसके अनुकूल वर्ताव करना चाहिये। दक्षिणायन काल में भोग पदार्थ अर्थात् अनाज, ईख, फल, दुग्ध आदि अधिक उत्पन्न होते हैं और भूख भी बढ जाती है। इनको मनुष्य खाकर शारीरिक बल की अधिक वृद्धि करते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक दिन **अपराह्णकाल** के आरंभ होने से मानो भोग पदार्थों के सेवन का समय आरंभ हो जाता है और इसी नियम के अनुसार चलने वाले सुख उठाते हैं।

स्वाहापूष्णे....पितृभ्य उर्द्धबर्हिभ्यो धर्म पापभ्य....

यजु. अ. ३८ मं. १५. में (पितृभ्यः) पालकेभ्य ऋतव इव वर्तमानेभ्यः। इस में ऋषि दयानन्द ने पितर शब्द ऋतु अर्थ में लिया है।

तिरश्चिराजी के अर्थ तिरछी किरणें हमने किये हैं और इनसे बंबई गुरुकुल के आचार्य श्रीयुत् पं. मयाशंकर अंबाशंकर शास्त्री भी पूर्णतया सहमत हैं यथा "तिरश्ची (तिरछा), राजी (प्रकाश) कारण कि राजृ धातु दीपन वा प्रकाश अर्थ में है।"

"तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा मधः स्विदासी

(यजु. अ. ३३ मं. ७४)

पदार्थः-(तिरश्चीनः) तिर्यगमनः (विततः) विस्तृतः (रश्मिः) किरणोदीप्तिः (एषाम्) विद्युत्सूर्यादीनाम्। भाषापदार्थः-(एषाम्)

इन विद्युत् और सूर्य आदि की (तिरश्चीनः) तिरछे गमनवाली (विततः) विस्तारयुक्त (रश्मिः) किरण वा दीप्ति (अधः) नीचे (स्वित्) भी (आसीत्) है।" इस मंत्रमें प्रकाश की तिरछी गति का वर्णन है।

यजु. अ. ३७ मं. १२ में दक्षिणतः–इन्द्रस्य यह दो शब्द विचारणीय हैं। ऋषि दयानन्दने इन का इस प्रकार भाष्य किया है। इस से दक्षिण दिशा के साथ 'विद्युत् वा इन्द्र शब्द का संबंध दिखाया गया है। जिस से हमारे इन्द्र शब्द के अर्थ विद्युत् करने को भारी पुष्टि मिलती है।

"(दक्षिणतः) दक्षिण देशात् (इन्द्रस्य) विद्युत् ऐश्वर्यस्य वा।"

अनाधृष्टा परस्ता दग्नेराधिपत्य आयुर्मेदाः।
पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याऽधिपत्ये प्रजा मेदाः॥

(यजु. अ. ३७ मं. १२)

मनसा परिक्रमा के ६ मन्त्रों में पापी अथवा द्वेषियों के लिए जो भाव प्रगट किया गया है उस को विशेष समझने के लिए ऋषि दयानन्द के निम्न शब्द जो उन्होंने "सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु" के भाष्य में लिखें हैं मनन कीजिये।

"(यः) जो अधर्मी (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करे (तस्मै) उस के लिए प्राण जल व औषधियां (दुर्मित्रियाः) दुष्ट मित्रों के समान् दुःखदायी (सन्तु) होवें।"

भावार्थः—"जो मनुष्य दूसरों के सुपथ्य औषध और प्राण के तुल्य रोग दुःख दूर करते हैं वह धन्यवाद के योग्य हैं, और जो कुपथ्य दुष्ट औषधि और मृत्यु के समान औरों को दुःख देते हैं उनको बार बार धिक्कार है।" मूल मंत्र यह हैः—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः

(यजु० अ० ३८ मं० २३)

यजु० अ० ३५ मं० १२ में उक्त मंत्र दुबारा आया है। उस पर कुछ अर्थ विशेष नहीं किन्तु उसका भावार्थ जो ऋषि दयानन्द के मनसे निकलता हुआ है मनन करने योग्य होने से नीचे दिया जाता है। यह भाषा भावार्थ संस्कृत भावार्थ का ठीक अनुवाद हैः—" जो राग द्वेषादि दोषों को छोड कर सब में अपने आत्मा के तुल्य वर्ताव करते हैं उन धर्म्मात्माओं के लिए सब जल, औषधि आदि पदार्थ सुखकारी होते हैं और जो स्वार्थ में प्रीति तथा दूसरों से द्वेष करनेवाले हैं उन अधर्मियों के लिए यह सब उक्त पदार्थ दुःखदायी होते हैं। मनुष्यों को चाहिये कि धर्म्मात्माओंके साथ प्रीति और दुष्टों के साथ निरन्तर अप्रीति करें, परन्तु उन दुष्टों का भी चित्तसे सदा कल्याण चाहें।"

पश्चिमीय विद्वानों ने इस बात पर बहुत विचार किया है कि ऋतुएं क्यों जन्म लेती हैं ? वह कहते हैं कि यद्यपि गरमी के

मौसम में पृथ्वी भ्रमण करती हुई सूर्य्य के शीतकाल की अपेक्षा बहुत दूर होती है तो भी सूर्य्य की किरणें उस तक अधिक सीधी पहुँचती हैं और सूरज आकाश में सिर पर होता है। जिसका भाव भी वही है। वायु एक बड़े कम्बल की न्यांई है जो गरमी को अन्दर सुरक्षित रखती और बाहर की गर्मी को बाहर रहने देती है। यदि सूर्य की किरणें ऊपर से सीधी हवा के बीचमें से आती हैं तो उनको बहुत मार्ग की यात्रा नहीं करनी पडती अपेक्षा उसके जबकि यह किरणें तिरछी होकर हवाके बीचमें से यात्रा करें। पृथ्वीका सूर्य्य से दूर होना वास्तव में ऋतुओं का कारण नहीं, यह बात स्पष्ट है, कारण कि हमारे शीत काल में आस्ट्रेलिया (राष्ट्रालय) में जो दक्षिण में है गर्मी की ऋतु होती है। आगे चलकर पाश्चिमीय विद्वान् यह बतलाते हैं कि शीत ऋतु में सूर्य की किरणों को बहुत तिरछी होकर हवा में से जाना पडता है और इस लिये वह शक्तिहीन हो जाती हैं। उनका कथन है कि वह कल्पित मेरूदण्ड नामी रेखा सदैव पृथिवी को तिरछी वा ढलवान मार्ग में रखती है। इसको हम अपने शब्दों में यह कह सकते हैं कि पृथ्वी अंडाकार परिधि में घूमती है। यदि उसकी परिधि (आकाशमार्ग) चक्रवत् होती तो किरणें उस तक तिरछी नहीं किन्तु सीधी वा समअवस्था में पहुँचतीं और ऋतु भिन्नता का कोई कारण न होता। उक्त पाश्चिमीय लेखक महोदय ने चर्चा करते हुये प्रश्न किया है कि भूमध्य रेखा के प्रदेश क्यों गर्म हैं ?

उत्तर में लिखते हैं कि उक्त प्रदेश जिन को उष्ण कटिबन्ध कहा जाता है उन पर सदैव सूर्य्य की किरणें हवामें से गुजर कर सीधी पडती हैं, तिरछी नहीं। सूर्य्य सदैव उक्त प्रदेशों में शिरपर ही दीखता है। [देखो Book of Knowledge Vol. 11-12].

ऋग्वेद में मं. १ अ. ४ सू. १५ के प्रथम चार मन्त्रों में ऋतुओं सम्बन्धी ज्ञान मिलता है। पहिले मन्त्र में बताया है कि ऋतु ऋतु में रस की उत्पत्ति और गति होती है तथा भावार्थ में महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि:—

"यह सूर्य्य वर्ष उत्तरायण दक्षिणायन वसन्त आदि ऋतु चैत्र आदि बारहों महीने शुक्ल और कृष्ण पक्ष दिन रात मुहूर्त जो कि तीस कलाओं का संयोग कला जो तीस काष्ठा का संयोग काष्ठा जो कि अठराह निमेष का संयोग तथा निमेष आदि समय के विभागों को प्रकाशित करता है जैसे कि मनुजीने कहा है और उन्हीं के साथ सब औषधियों के रस और सब स्थानों से जलों को खींचता है वे किरणों के साथ अन्तरिक्ष में स्थित होते हैं तथा वायु के साथ आते जाते हैं।"

इस से हम कह सकते हैं कि उक्त मन्त्र में जो रसों को किरण द्वारा खेंचने का मुख्य वर्णन है उसका सार यह है कि यह सूर्य किरणों की **प्रबल दशा** का बोधन करा रहा है। यह दशा गर्मी के दिनों में अथवा उत्तरायण काल में हो सकती है। इस से

सिद्ध हुआ कि सूर्य्य किरणों का प्रबल अवस्था में भूमि पर पहुँचना उत्तरायण वा उष्ण काल का कारण है।

दूसरे मन्त्र में दर्शाया है कि पवन रसों को उड़ा ले जाता है। शीत काल में पवन का मानो वेग होता है और सूखापन सर्वत्र अनुभव होने लगता है। घृत आदि रसीले पदार्थ उस सूखी ऋतु में खाने पडते हैं।

तीसरे मंत्र में विद्युत जो कि सूर्य्य किरणों की अपेक्षा सूक्ष्म अग्नि है, ऋतुओं को उत्पन्न करने में सूक्ष्म रूप से उतना ही भारी कारण बन जाती है जितना कि सूर्य ताप। यूरोप के विद्वान् अभीतक अधिक स्पष्ट रूप से विद्युत को ऋतु जन्म में एक कारण अनुभव नहीं कर सके।

चौथे मन्त्र में सर्व प्रकार की अग्नि को ही ऋतुओं का संयोजक होना बताया है। अग्नि शब्दसे महर्षि दयानन्दने भौतिक तथा विद्युत अग्नि दोनों अर्थ लिये हैं जो कि बहुत युक्त हैं।

उक्त वेदमन्त्रों से यह बातें सिद्ध होती हैं।

(१) प्रबल किरणें गरमी की ऋतु का कारण हैं और अर्थापत्ति से यह सिद्ध हुआ कि निर्बल किरणें शीत ऋतु का कारण हैं।

(२) सूक्ष्म विद्युत अग्नि दूसरा कारण है। इस विषय में युरोप के विद्वान् जिस तत्त्व को दर्शा रहे हैं वह

यह है कि सीधी किरणें गर्मी और तिरछी किरणें शीत ऋतु का कारण हैं। सीधी किरणों को हम अपने शब्दों में प्रबल किरणें और तिरछी किरणों को निर्बल कह सकते हैं। वेदने जो विद्युत को एक कारण दर्शाया है वह वास्तव में यूरोप वाले अभी पूर्ण रूप से अनुभव नहीं कर पाये। पृथिवी की परिधि जो अण्डाकार है उसको यूरोप के विद्वान् भी मेरू-दण्ड रूपी कल्पित रेखा का तिरछा होना स्वीकार कर मान रहे हैं, और इस में किसी का मतभेद नहीं।

कई साधारण लोग प्रश्न करते हैं कि विद्युत क्यों कर रस को सुखाने का काम करती है? ऐसे लोग यह समझते हैं कि बिजली चमक के सिवाय कोई गर्मी विशेष रखने वाली वस्तु नहीं। पर यह उनकी भूल है कारण कि आज कल अनेक प्रदर्शनों में आग की जगह तारारूढ़ गुप्त बिजली ने पक्वान बनाने तथा घी में पूडी आदि तलने का काम किया है। इस लिये गुप्त बिजली में अग्नि का दाह गुण है यह सब को प्रगट हो गया।

शास्त्र में इन्द्र विद्युत को जो परोक्ष अग्नि का नाम दिया गया है वह सर्वथा सत्य है।

दक्षिण दिशा में जैसा कि यूरोप के सर्व पदार्थ विज्ञानी मानते हैं इस विद्युत् का राज्य है और परिक्रमा मन्त्र के इन शब्दों में **दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिः** वही तत्त्व मौजूद है।

ऋषि दयानन्द भाष्य और इन्द्र शब्दः-

ऋ० मं० १ सू० २ मं० ६	भावार्थ
१. इन्द्रश्चः-अन्तरिक्षस्थः सूर्य्य प्रकाशो वायुर्वा ।	इन्द्र के अर्थ-अन्तरिक्षस्थ सूर्य्य प्रकाश वा वायु ।
इन्द्रियमिन्द्र लिंगमिन्द्र दृष्टिमिन्द्र	... ...
सृष्टिमिन्द्र जुष्टमिन्द्र दत्तमितिवा ।	... ...
अष्टा० ५-२-९३ इति सूत्राशयादिन्द्र शब्देन जीवस्यापि ग्रहणम् ।	इस अष्टा० के सूत्रानुसार इन्द्र शब्द का अर्थ जीव है ।
२. ऋ० मं० १ सू. ५ मं० १	
इन्द्रं=परमेश्वरं विद्युदादि वायुवा ।	इन्द्रं=परमेश्वर वा बिजली से जुडा हुआ वायु ।
३. ऋ० मं० १ सू० ५ मं० ६	... ...
इन्द्र= विद्वन्	विद्वान्
४. ऋ० मं० १ सू० ७ मं० २	... ...
इन्द्र=सूर्य्य	सूर्य्य
५. ऋ० मं० १ सू० १२ मं० ८	... ...
इन्द्रम्=सकलैश्वर्य्य युक्तम्	सकलऐश्वर्य वाला
६. ऋ० मं० १ सू० १६ मं० ३	... ...
इन्द्रम्=भौतिकमग्निम्	भौतिक अग्नि
७. ऋ० मं० १ सू० १४ मं० ३	... ...
इन्द्रवायू=विद्युत् पवनौ	इन्द्र=बिजली वायु=पवन
८. ऋ० मं० १ सू० ३२ मं० ५	
इन्द्र=विद्युत्	बिजली

यजुर्वेद अध्याय ३५ मंत्र दो में बतलाया है कि हे जीव, परमात्मा जिस तेरे जन्म जन्मांतरों के शरीरों के लिए अन्तरिक्ष वा भूमि में कर्म्मों के अनुकूल सुख दुःख के साधन प्रापक स्थान को चाहे उस तेरे लिये प्रकाशरूप किरण उपयोगी हों ।

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु ।
तस्मै युज्यन्तामुस्रियः ॥ यजु. अ. ३५ मं. २

भावार्थ:-हे जीवो । जो जगदीश्वर तुम्हारे लिए सुख चाहता है और किरणों द्वारा लोक लोकान्तर को पहुंचाता है यही तुम लोगों को न्यायकारी मानना चाहिये ।

इससे अगले तीसरे मंत्र का भावार्थ यह है कि जीव शरीरों को छोड के विद्युत् सूर्य्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते और गर्भ में प्रवेश करते हैं तब किरण उन को छोड देती हैं । इनसे इन्द्र वा विद्युत का जीवको परलोक ले जाना सिद्ध है ।

' अथर्तुना सह विद्युत् किं करोतीत्युपदिश्यते ।"
" अब ऋतुओं के साथ विद्युत् अग्नि क्या करता है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है । "

अभियज्ञं गृणीहिनो ग्रावो नेष्टः पिब ऋतुना ।
त्वं हि रत्नधा असि । ऋ. मं. १ अ. ४ सू. १५ मं. ३ ।

(नेष्टः) विद्युत् पदार्थ शोधकत्वात्पोषकत्वाच्च । शुद्धि और पुष्टि आदि हेतुओं से सब पदार्थों का प्रकाश करने वाली बिजली (ऋतुना) ऋतुओं के साथ रसों को (पिब) पीता है तथा (हि) जिस कारण (रत्नधा) उत्तम पदार्थों की धारण करनेवाली (असि) है (त्वम्) सो यह (ग्नावः) सब पदार्थों की प्राप्ति कराने हारी

(नः) हमारे इस (यज्ञम्) यज्ञ को (अभिगृणीहि) सब प्रकार से ग्रहण करती है।

(भावार्थ)—यह जो बिजली अग्नि की सूक्ष्म अवस्था है सो सब स्थूल पदार्थों के अवयवों में व्याप्त होकर उन का धारण और छेदन करती है। इसी से यह प्रत्यक्ष अग्नि उत्पन्न होकर उसी में विलय हो जाता है।

"It is true indeed that rays whose vibrations are too slow to be seen produce *powerful heating effects* ...but it is also true that the visible rays are capable of producing the same effects to a greater or less degree"

(अर्थ) निस्सन्देह यह सत्य है कि वह किरणें जिन की तरंगें इतनी धीमी होती हैं कि दृष्टिगोचर नहीं होतीं वह अत्यंत उष्णतायुक्त प्रभाव उत्पन्न करती हैं........परन्तु यहभी सत्य है कि दृष्टिगोचर होनेवाली किरणें भी वही प्रभाव अधिक अथवा न्यून परिणाम में उत्पन्न करती हैं।

अभी ऊपर वेदमन्त्रोंद्वारा हम दर्शाचुके हैं कि ऋतुओं के परिवर्तन का एक कारण विद्युत प्रभाव भी है। उसी तत्त्वकी पुष्टि पश्चिम के एक प्रसिद्ध पदार्थ विज्ञानी का उपरोक्त लेख कर रहा है। इस लेख का सार यह है कि वह किरणें चाहे सूर्य्य की हों, चाहे विद्युत की, नजर न भी आवें तो भी वह अत्यन्त उष्णता कारक

होती हैं । इस लिये वह विद्युत प्रवाह जिस का भण्डार दक्षिण दिशा में है और जो दृष्टिगोचर नहीं होता वह **अत्यन्त उष्णता जनक** प्रभाव रखने से ऋतु परिवर्तन का प्रथम श्रेणी का कारण समझना चाहिये । वेदमन्त्र में भी जब पितर (ऋतुओं) का वर्णन आया तो उस दशा में जो प्रधान कारण ऋतुओं का है उसी को अधिपति वा प्रधान शक्ति दर्शाना पदार्थ विज्ञान का यथार्थ दर्शन कराना है। यदि कहीं किसी अन्य मंत्र में दक्षिण दिशा का वर्णन करते हुए इन्द्र को प्रधान रूप दिया गया न मिले तो उस समय उसका इषु वा कार्य्यक्षेत्र ऋतु नहीं होगा, उस समय पितर शब्द के दूसरे अर्थ प्रसंग अनुसार होंगे ।

अतः ऋतुओं का प्रधान कारण गुप्त वा अदृश्य विद्युत प्रवाह है जो कि सर्वत्र फैलरहा है किन्तु जिसका भंडार वा मुख्य आगार दक्षिण तथा उत्तरीय ध्रुव प्रदेश हैं । विद्युत समान वा उससे कुछ न्यून कारण दृष्ट सूर्य्यरश्मि हैं । जब यह रश्मिएं तिरछी पडतीं हैं तो बलहीन होने से शीत ऋतु को जो दक्षिणायनजन्य कही जा सकती है उत्पन्न करतीं हैं ।

उत्तरायण काल का आरंभ मकरसंक्रान्त से होता है । उस दिन दक्षिणी आर्य्य प्रजा बडा भारी उत्सव मनाती है । आर्य्य राजे दक्षिण में उस दिन भारी दरबार (राज्यसभा) भरते हैं । उत्तरीय आर्य्य जनता उस दिन माघी समझ बडा पर्व मनाती है ।

निरुक्तरत्न पण्डित जगन्नाथजी अमृतसरी ने यह बात

सिद्ध करदी है कि युरोप में जो क्रुसमस पर्व मनाया जाता है प्राचीन काल में यही उत्तरायण पर्व था। इस की तैय्यारी वह एक पक्ष अर्थात् १५ दिन पहिले करते होंगे। पादरियों ने मसीह उत्सव की संधि उत्तरायण पक्ष से करदी होगी। अब उस पक्ष का आरंभ दिन ही बडा दिन (पर्व) माना जा रहा है। पुराने समय में २५ दिसंबर+१५ दिन=१० जनवरी का दिन, जो अन्तिम दिन है बडा दिन था। १० जनवरी के वा उस के लगभग मकरसंक्रान्ति होती है और भारतीय आर्य्य अभी तक ऋतु परिवर्तन के मूल दिन को भारी उत्सव तथा मंगल मनाते हैं। इसी उत्तरायण संबंधी अंगरेजी का निम्न लेख है जो सूर्य्य गति निरीक्षण पर बल दे रहा है, जिसको उद्धृत कर उसका भाषा अनुवाद हम देंगे।

" If we watch him from day to day through the year, beginning about the 21 st. of March we shall find that at noon he daily rises higher in the heavens, *until* about the 22nd of June; at this time he ascends to the same height each noon for several successive days and then *Slides Slowly South* passing on September 22nd the elevatien he had at starting and keeping on until on Dec 21st, he attains his *Furthest Southing*; thence he returns till he reaches the place of beginning and night & day again are equal. "

(अर्थ) "यदि हम प्रतिदिन सूर्य्य का वर्ष भर निरीक्षण करें

तो २१ मार्च से आरंभ करके हमें पता लगेगा कि दो प्रहर को वह प्रति दिन आकाशमें सबसे ऊंचे चढता है, यहां तक कि २२ जून को वह उसी ऊंचाई पर प्रत्येक प्रहर को कई दिन लगातार चढेगा और फिर धीरेसे दक्षिण की तरफ ढलकेगा, २२ सितंबर को उस ऊंचाई पर से गुजरता हुआ जहां कि वह आरंभ में पहुंचाथा और उसको जारी रखेगा २१ दिसंबर तक और परम दक्षिणी सीमामें पहुंचेगा, वहां से वह लौटेगा यहां तक आरंभ की जगह में आजाए और रात और दिन फिर बराबर होगें।"

यजुर्वेद अ. १५, मंत्र १८ में ऋतुचर्चा है और आश्विन तथा कार्तिक अथवा शरद ऋतु का व्याख्यान है। महर्षि दयानन्दजी ने स्वयं यह शब्द लिखे हैं कि इस मंत्र में ऋतु संबंधी "शेष व्याख्यान है।"

यजुर्वेद अ. १५, मंत्र १९ में हेमंत ऋतु अर्थात् मार्गशीर्ष तथा पौष का व्याख्यान है। यजु. अ. १५ मं. ५७ में माघ तथा फाल्गुन अर्थात् शिशिर ऋतु का व्याख्यान है।

यजु. अ. १४ मं. २९ में वसंतऋतु तथा चैत्रादि १२ मास का भी वर्णन है।

यजु. अ. १४ मं. २७ में हेमंत ऋतु का वर्णन करते हुए मार्गशीर्ष को बलकारी और पौष को बलदायक मास दर्शाया गया है।

यजु. अ. १४ मं. १६ शरद ऋतु परक है। यजु. अ. १४ मं. १५ में से कुछ लेख नीचे देते हैं जिस से शीत और

गरमी के मिलाप से उत्पन्न होनेवाली वर्षा ऋतु का साररूप से वर्णन है ।

"(नभ):=नह्यन्ति घनायस्मिन् स श्रावणेमासः (च) (नभस्यः) नभस्सुभवो भाद्रपदः (च) (वार्षिकौ) वर्षासु भवौ–"

"प्रबंधित मेघोंवाला श्रावण और वर्षा का मध्य भागी भाद्रपद ये दोनों वर्षाऋतु के महीने मेरे प्रशंसित होने के लिये हैं, जिनमें उष्ण तथा जिन के मध्य में शीत का स्पर्श होता है।

उन वेदमंत्रों के व्याख्यान अनुसार १२ मास की नामावली इस प्रकार मिलती है (देखो यजुर्वेद भाष्य)

१. चैत्र, वैशाख = बसंतऋतु
२. ज्येष्ट, आषाढ = ग्रीष्मऋतु
३. श्रावण, भाद्रपद = वर्षाऋतु
४. आश्विन, कार्तिक = शरदऋतु
५. मार्गशीर्ष, पौष = हेमंतऋतु
६. माघ तथा फाल्गुन = शिशिरऋतु

साधारण रूपसे लोग सरदी, गरमी और बरसात तीन ऋतु मान लेते हैं पर विज्ञान दृष्टि से ऋतु छही होती हैं और इन छ ऋतुओं का वर्णन न केवल उक्त मंत्रोंमें ही मिलता है किन्तु अन्य अनेक मंत्रों में है। Electrification of Gases अर्थात् वायव्य पदार्थों में विद्युत संचरण के विषय पर लिखते हुए पश्चिमी पदार्थ विज्ञानी दर्शाते हैं कि:–

"यद्यपि ठोस और बहनेवाले पदार्थों में विद्युत प्रवेश शीघ्रतासे हो सकता है तथापि यह अत्यन्त कठिन है कि किसी वायव्य पदार्थ में जो अपने यथार्थ स्वरूप में है विद्युत संचरण हो सके। यह बात इससे स्पष्ट होती है कि एक ठोस उत्तम विद्युत वाहक पदार्थ में जो अवाहक वस्तु से सुरक्षित है जब विद्युत संचरण हो जावे तो वह लेश मात्र भी विद्युत प्रभाव को नहीं खोता यद्यपि वह चारों तरफ वायु से घिर रहा है।"

उक्त, लेख से यह बात सिद्ध होती है कि ऋतु परिवर्तन का कारण वायु नहीं हो सकता। वायु में जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है विद्युत् तथा रश्मियों को सुरक्षित रखने की शक्ति है। इस लिये एक पश्चिमी पदार्थ विज्ञानो ने ऋतुओं का वर्णन करते हुए वायुको कंबल की उपमा दी है। वह लोग जो कहा करते हैं कि वेद के विज्ञान परक मन्त्रों में अलंकार वा उपमादि से क्यों काम लिया गया है? उसके उत्तर में हम पश्चिम के पदार्थ विज्ञानियों का दृष्टान्त दे सकते हैं जो विज्ञान की चर्चा करते हुए वायुको विद्युत् आदि का कंबल कहते हैं। कम्बल वा सरपोश वा सुरक्षक वस्तु की उपमा से उन को विद्यार्थियों के मन पर यह बात बिठलानी है कि वायु का गुण कर्म अमुक विषय में कैसे है? वास्तव में दृष्टान्त वा उपमा विना बात समझ में नहीं आती।

Atom अर्थात् परमाणु संबंधी लिखते हुए इस समय के पश्चिमी विद्वान् लिखते हैं कि प्राग और रयि विद्युत् अणुओं

की समान संख्या का नाम परमाणु है। बंबई निवासी श्रीयुत डाक्टर कल्याणदासजी का मत है कि "वर्तमान युरोप के पदार्थ विज्ञानी मानते हैं कि विद्युत् अणु दो प्रकार के हैं एक को वह Positive (पौजिटिव) और दूसरे को वह Negative (नैगेटिव) कहते हैं।" सांख्यशास्त्र में जो सत्व और तम का वर्णन है उससे यह बात मिलती है। हम भी श्री डाक्टर जी के मत से सहमत हैं। इस के अतिरिक्त प्रश्नोपनिषद में **प्राण** और **रयि** शब्दों का वैज्ञानिक वर्णन आता है वह निर्विवाद पौजिटिव और नैगेटिव का भावदर्शक है।

अतः पौजिटिव विद्युत् को हम प्राणविद्युत् और दूसरी को रयिविद्युत् कहेंगे। यहां मन्त्र में इसी को इन्द्र कहा गया है।

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम्। (ऋ. मं.१, सू.१६४ मंत्र १२).

अर्थः—(पञ्चपादम्) पञ्च क्षणमुहूर्त्तप्रहरदिवसपक्षाः पादाः यस्य तं संवत्सरं सूर्यं वा (पितरम्) पितृवत्पालननिमित्तम् (द्वादशाकृतिम्) द्वादश मासा आकृतिर्यस्य तम् (दिवः) प्रकाशमानस्य (आहुः) कथयन्ति (परे) (अर्द्धे) (पुरीषिणम्) पुराणां सहितानां पदार्थानामीषितारम् (अथ) (इमे) (अन्ये) अन्ये पदार्थाः (उपरे) मेघमण्डले (विचक्षणम्) वागविषयम् (सप्त चक्रे) सप्तविधानि चक्राणि भ्रमणपरिधयो यस्मिंस्तस्मिन्

(षळरे) षट् ऋतवोऽरा यस्मिंस्तस्मिन् (आहुः) कथयन्ति (अर्पितम्) स्थापितम् ।

भाषा पदार्थः—" हे मनुष्यो तुम (पञ्चपादम्) क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिवस, पक्ष, ये पांच पग जिसके (पितरम्) पिताके तुल्य पालन कराने वाले (द्वादशाकृतिम्) बारह महिने जिस का आकार (पुरीषिणम्) और मिले हुए पदार्थों की प्राप्ति वा हिंसा कराने वाले अर्थात् उनकी मिलावट को अलग अलग कराने वाले संवत्सर को (दिवः) प्रकाशमान् सूर्यके (परे) परले (अर्द्धे) अधोभाग में विद्यमान् (आहुः) कहते हैं, बताते हैं, (अथ) इसके अनन्तर (इमे) ये (अन्ये) और विद्वान् जन (षळरे) जिसमें छ ऋतु आरारूप और (सप्तचक्रे) सातचक्र घूमने की परिधि विद्यमान उस (उपरे) मेघमंडलमें (विचक्षणम्) वाणी के विषय को (अर्पितम्) स्थापित (आहु, कहते हैं उस को जानो।"

ऋ. मं. १ अ. २२ सू. १६४ मंत्र १२.

ऋ मं. १अ २२ सू. १६४ मंत्र १७ में पृथ्वी के सूर्य के चारों तरफ घूमनेका वर्णन है और यह भी दिखाया है कि एक अर्धे भागमें अन्धकार व दूसरे अर्धे भागमें प्रकाश व दिन रहता है ।

इसी मंडल सूक्त के ९ वें मंत्र में बतलाया गया है कि " भूमि आकर्षणों में युक्त है जैसे बछडा गौ के पीछे जाता है वैसे यह भूमि सूर्य का अनुभ्रमण करती है । "

आप्टे कृत कोष में अर्थ इस प्रकार हैं:—(१) क्षण (२) मुहुर्त (६) प्रहर।

उक्त मंत्र से निम्न लिखित बातें सिद्ध होती हैं । (क) काल के सूक्ष्म अंग (ख) काल के महान् अंग (ग) भूमिका सौर परिभ्रमण (घ) दिनरात तथा ऋतु उत्पत्ति (ङ) भूमि सप्तचक्री अर्थात् सातपरिधि रूपी चक्रों से युक्त होने के कारण गोलाकार है ।

पाठशालाओं में विद्यार्थियों को दृष्टान्त से ऋतु ज्ञान देने के लिये मट्टी वा काष्ट के गोले और दीपक के प्रयोग दिखाए जाते हैं जिस से प्रथम यह बात उन के मन पर बैठ जावे कि भूमि का **सौर परिक्रमण** ही ऋतुओंका मुख्य कारण है। विद्यार्थियों को बारंबार बतलाया जाता है कि पृथिवी की गति समय, **उत्तर गोलार्द्ध, सूर्य्य की तरफ अधिक झुका हुआ रहता** है और दक्षिण गोलार्द्ध विरुद्ध दिशामें हो जाता है । इस समय उत्तर गोलार्द्ध के देशों को दक्षिण गोलार्द्ध देशों की अपेक्षा **अधिक प्रकाश और ताप** मिलता है और **दिन लंबे और गरम** प्रतीत होते हैं । इस लिये उत्तरायण काल के ६ मासों में उत्तर गोलार्द्ध में शीत प्रधान ऋतु नहीं हो सकती और उसी समय दक्षिण गोलार्द्ध में न्यून प्रकाश तथा न्यून ताप रहने से वहां शीत ऋतु होती है। जब दक्षिण गोलार्द्ध सूर्य्य की तरफ नमता है तब वहां गरमी के दिन होते हैं । **विषुववृत्त** (भूमध्यरेखा) के निकट देशों में तो

सदैव समान दिवस रहने से समान गरमी रहती है और इस लिये वहां ऋतु परिवर्तन नहीं होता।

शीतकाल में सूर्य्य आकाश में जितना ऊंचा चढा हुआ दृष्टि पडता है उस से **अधिक** ऊंचा चढा हुआ वह गरम ऋतु में दृष्टि पडता है, देखकर यह बात सब ही जान सकते हैं। ठीक दो प्रहर को सूर्य्य किस स्थानपर नजर आता है इसको जानने के लिये कुछ दिन लगातार श्रम करना होगा। अन्त को हम जान लेंगे कि २१ जून के दिन सूर्य्य आकाश में ऊंचे से ऊंचे स्थान पर नजर आवेगा। उत्तर गोलार्द्ध में यह दिन सब से बडा वा लंबा होता है। डिसेंबर मासकी २१ तारीख को सूर्य आकाश में नीचे से नीचे स्थानपर दृष्टि पडेगा और वह दिन सब से छोटा होगा। भूमि प्रदर्शक गोले पर **विषुववृत्त** (व्यासरेखा) और ध्रुव वृत्त के मध्य में जो अन्तर है उस के चतुर्थ भाग के अन्तर पर विषुववृत्तसे उत्तर और दक्षिण की तरफ दो रेखाएं विद्यार्थियों को मालूम पडेंगी, इस रेखा का नाम **संक्रांतिवृत्त** है उत्तर की रेखा **मकर-संक्रान्ति** और दक्षिण की रेखा **कर्क-संक्रान्ति** कहलाती है। संक्रान्ति संस्कृत शब्द है और इसके अर्थ कैसे उत्तम हैं, अर्थात् 'एक राशि में से दूसरी राशि में जाना।

२१ जून को उत्तर गोलार्द्ध में जब बडा लंबा दिन होता है तो उस दिन मकर संक्रान्तिवृत्त वाले सर्व देशों में **दोपहर** को

सूर्य्य बराबर शिर के ऊपर आता है। डिसेंबर की २१ तारीख को कर्क संक्रान्तिवृत्त वाले सब देशों में दो प्रहर को सूर्य्य ठीक शिरपर प्रतीत होता है। दक्षिण गोलार्द्ध में डिसेंबर के मास में सूर्य्य का ताप अधिक पडता है। विषुववृत्त पर के देशों मे २१ मार्च और २१ सेप्टेंबर को सूर्य्य दोपहर को ठीक आकाश के मध्य में दृष्टि पडता है।

२१ मार्च को जब सूर्य्य विषुववृत्तवाले देशों में शिरपर नजर आता है तो तब उसकी किरणें दोनों ध्रुवीय प्रदेशों तक पहुंच सकती हैं। २१ जून को सूर्य्य किरणें उत्तर ध्रुवीय प्रदेश तक तो पहुंचती हैं पर दक्षिण ध्रुवीय प्रदेश में नहीं पहुंच सकतीं। २१ सेप्टेंबर को फिर सूर्य्य किरणें दोनों ध्रुवीय प्रदेशों तक पहुंचती हैं। २१ डिसेंबर को सूर्य्य किरणें उत्तर ध्रुवीय प्रदेश तक नहीं पहुंच सकतीं। इन कारणों से ध्रुववृत्त से लेकर ध्रुव-विन्दु तक के देशों में गरम ऋतु के मध्य भाग में सूर्य का प्रकाश लगातार कई दिनों तक रहता है और शीतकाल के मध्य भाग में लगातार कई दिनतक अन्धेरा रहता है।

संक्रान्तिवृत्त और विषुववृत्त वाले देश अधिक गरम रहते हैं। वर्षभर समान दिन होते हैं और सदैव सूर्य्य शिर पर ही दृष्टि पडता है इस को **उष्ण कटि बंध** प्रदेश भी कहते हैं।

संक्रान्तिवृत्त और ध्रुववृत्त के मध्य में **समशीतोष्ण** प्रदेश

है। भारत वर्ष इसी भाग में है इन देशों में उष्ण कटिबंध के देशों से अधिक शीत पडता है पर ध्रुव प्रदेशों से यह अधिक गरम होते हैं।

माघ मास की प्रथम तिथि को मकर संक्रान्ति अथवा उत्तरायण काल का आरंभ होता है। माघ, फाल्गुण, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ट और आषाढ के महीने ज्योतिश शास्त्र वा भूगोल विद्या अनुसार उत्तरायण काल के हैं। उत्तरायण काल से सूर्य्य का ताप अधिक बढना आरंभ हो जाता है पर बसंत अपने पूर्ण यौवन पर चैत्र और बैशाख में ही होती है। इस लिये ऋतु गणना में मास का अन्तर हो जाता है।

यजुर्वेद अ. २१ मं. २३, २४, २५, २६, २७ तथा २८ में बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर ऋतुओं का सारगर्भित वर्णन है। उक्त मंत्रों के भाष्य का सार यह है कि (१) "(वसन्तेन) जिस में सुख से रहते हैं उस प्राप्त होने योग्य वसन्त (ऋतुना) ऋतु के साथ वर्त्तमान हुए।" (२) "(ग्रीष्मेण) सब रसों के खेंचने और (ऋतुना) उष्णपण प्राप्त करने हारे ग्रीष्म ऋतु।" (३) "(वर्षाभिः) जिस में मेघ वृष्टि करते हैं उस वर्षा (ऋतुना) प्राप्त होने योग्य ऋतु।" (४) "(शारदेन) शरद (ऋतु) ऋतु।" (५) "(हेमन्तेन) जिस में जीवों के देह बढते जाते हैं उस (ऋतुना)

प्राप्त होने योग्य हेमंत ऋतु।" (६) "(शैशिरेण ऋतुना) प्राप्त होने योग्य शिशिर ऋतु।" उक्त भाष्य देखने तथा मंत्रार्थ पर विचारकरने से दो महान् तत्व ऋतुओं संबंधी ज्ञात होते हैं।

(१) प्रथम यह कि प्रत्येक ऋतु प्राप्त करने योग्य है।

(२) दूसरे यह कि वसंत आयु और तेज कारक है। ग्रीष्म यश और बलदाता, वर्षा ओज दाता, शरद धन कारक सुख दाता, हेमंत बलकारक सुखदाता शिशिर राज्य सामग्री वर्द्धक तथा सुखदाता है।

एक उपनिषद् में एक ऋषि ने सच्च कहा है कि ऋतुओं की निन्दा न करे उस का मूलउक्त मंत्र ही है। जो ऋतुओंकी निन्दा कर गरमियोंमें पहाडों पर ही भागना श्रेष्ट समझते हैं वह शारीरिक तपस्या नहीं कर सकते। ऋतुओं के गुण जान पथ्यपान से व्यवहार कर के हमारे पुराने ऋषि आयु बढाते थे। बडे बडे हवन यज्ञों के करने तथा गिलो, कौड, चरैता, पित्तपापडा, त्रिफला आदि महोषधियों के सेवन करने से वह रोगों से मुक्त रहते थे। बरफ के पानी, मलाई की बरफ आदि कृत्रिम शीत खानपान से दंतरोग नहीं खरीदते थे। मट्टी के घडों के पानी वा ताजे कूपजल की महिमा वह खूब जानते थे। मनों नमक डालकर वह कूपजल को रोग रहित तथा उत्तम बना लेते थे। स्नान आदि द्वारा प्रत्येक ऋतुका आनन्द भोगते और अन्न, फल, मेवा घी, दूध, तक्र आदि ऋषि पदार्थोंको उचित भोजन ऋतु अनुसार कर के दीर्घजीवी होते थे।

पृथिवी को गोलक (गेंद) वा नारंगी से उपमा देकर उस के गोल आकार को स्मरण कराना आजकल अत्यंत जरुरी समझा जाता है कारण कि स्वरूप ज्ञान विना उस के कार्यों का ज्ञान नहीं हो सकता। भारतीय आर्य ऋषियोंने इस तत्व को इस उत्तमता से दृढ किया था कि उस का वर्णन हो नहीं सकता। संस्कृत में भू के साथ गोल शब्द का मेल किया है कि सर्वदा भूगोल ही पृथिवी के लिय व्यवहार में आने लग गया अतः इस देश में भूगोल विद्या वा भूगोलशास्त्र का प्रयोग न करते हुए सर्व विद्यार्थी " भूगोल " को ही भूगोल विद्या का पर्यायवाची मानते हैं। दयानन्दकालेज लाहौर के अवै. प्रिन्सीपल श्रीमान् महात्मा हंसराजजी का कथन है कि–

" जितना सार गर्भित तथा सरल शब्द हमारा भूगोल है उतना अन्य किसी भाषा में नहीं है।"

आओ हम मंत्र के तत्व पर विचार करें—

(१) दक्षिण दिशा–यह शब्द बडे भाव सूचक हैं। बडौदा निवासी श्रीयुत कल्याणराय नथुभाई जोशी, बी. ए. भूपृष्ठ–विचार (भूगोल शास्त्रका प्रथम सोपान) नामी उत्तम पुस्तक में लिखते हैं कि प्राचीन काल में विद्यालयों में ऋषि लोग विद्यार्थियों को सूर्य्य के सामने खडा करके बतलाते थे कि जो दिशा तुम्हारे दाक्षिण हस्थ को है उसी का नाम दक्षिण जानो और इसी लिये संस्कृतमें दक्षिण शब्द दक्षिण का वाची है। उक्त लेखक की

पुष्टि आप्टे कृत कोष से हो रही है। अतः जब हमने सूर्य्य किरणों वाली दिशा को प्राची दिक् समझ लिया तो बैठे हुए वा खडे हुए यदि हम सीधा (दायां) हाथ आकाश में बढावें तो यह हाथ जिस दिशा का बोधन करावेगा उस का नाम दक्षिण दिशा समझियेगा।

(२) भूगोल के दक्षिणीय ध्रुव की तरफ रयि विद्युत् का राज्य है और यह विद्युत् वेद तथा पाश्चिमी वैज्ञानिकों की दृष्टि में ऋतु परिवर्तन का एक प्रबल अदृश्य कारण है।

(३) सूर्य्यकी तिरछी किरणें भी ऋतु परिवर्तन का एक कारण हैं, और दो प्रहर समाप्ति की सूचक हैं। अतः

(४) पितर जिस के अर्थ ऋतु तथा अपरान्ह काल के हैं, उस का भारी संबंध विद्युत् प्रवाह तथा तिरछी किरणों से है। इस लिये पितर के अर्थ यहां ऋतु तथा अपरान्ह काल सुसंगत हैं।

तिरश्चीराजी शब्दों के अर्थ तिरछे प्रकाश के हैं। इस की पुष्टि के लिये देखो यजुर्वेद भाष्य अ० १५ मं० ११ जहां ' विराट्--शब्द के अर्थ विविध पदार्थों से प्रकाश मान किये गये हैं।

पाठक पढ चुके हैं कि ऋषि दयानन्दजी ने प्राची दिक् के दो अर्थ एक यह कि जिधर अपना मुख हो दूसरे जिधर सूर्य्योदय हो किये हैं। वह अर्थ निरुक्त आदि वैदिक साहित्य अनुसार

ही हैं। लौकिक संस्कृत कोषों में भी वह अर्थ मिलते हैं। यथा आप्टेकृत कोष देखिये जहां लिखा है कि

प्राच प्रान्च, = आगे की तरफ झुका हुआ, सन्मुख, सब से आगे तथा, पूर्व को, पूर्वीय

आप्टेकृत कोष में दक्षिण शब्द के मुख्य अर्थ इस प्रकार हैं:–

दक्षिण = दाईं तरफ वा दक्षिणदिशा को, तथा दक्षिणदिशा में।

उक्त दोनों दिशा संबंधी इन अर्थों पर विचार करने से सिद्ध होता है कि दक्षिणदिशा उस दिशा का नाम है जो उस मनुष्य के सीधे वा दाएं हाथ को हो जो पूर्वदिशा की तरफ बैठा हुआ है। इस लिये जो लोग बैठकर इन मंत्रों पर विचार नहीं करते किन्तु पूर्व के पीछे घूमकर दक्षिणदिशा की तरफ मुख कर लेते हैं, उस समय दक्षिणदिशा उन के दक्षिण हाथ को नहीं रहेगी किन्तु सन्मुख होगी। इस लिये ऋषि दयानन्दने जो इन परिक्रमा मंत्रों का मनसा परिक्रमा मंत्र की संज्ञा दी सो वह ठीक सिद्ध होगई। कारण कि विना घूमे ही दक्षिण–दिशा उस मनुष्य के दक्षिण हाथ को होगी जो पूर्वाभिमुख स्थिर बैठा हुआ है।

१. दक्षिण दिशा की पहली पहचान यह है कि वह प्राची दिक् को मुख किये हुये मनुष्य के सीधे वा दक्षिण हाथ को होती है।

२. दूसरी पहचान इस मंत्र से यह सिद्ध होती है कि वह दिशा जिसमें सूर्य्य प्रकाश तिरछेपन को प्राप्त होने लगता वा ढलना आरंभ करता है।

३. विज्ञानदृष्टिद्वारा वह दिशा जिसमें रयि विद्युतका राज्य है। अर्थात् इन्द्र लोक (Electrical Regions)

यदि किसी विद्यार्थीसे पूछा जावे कि **पितरसंज्ञक ऋतु-**ओंके परिवर्तनके मुख्य कारण क्या हैं तो वह उत्तरमें कहेगा कि (१) विद्युतका अदृश्यताप (२) सूर्यकिरणों की विषमता, फिर यदि पूछें कि पितरकाल वा अपरान्ह का आरंभ कब होता है तो वह कहेगा कि जब सूर्य्य का प्रकाश दक्षिण दिशा में जाते ही ढलने लगता है। अतः इस प्रश्न उत्तर से मंत्र के अर्थों की संगति सिद्ध हो गई।

इस मन्त्र संबंधी अन्य विद्वानों के विचारः-

" जब पूर्व दिशाकी तरफ मुख कर के तुम खड़े होगे तो तुम्हारे दांए हाथ को दक्षिण दिशा और बांए हाथ को उत्तर दिशा होगी। संस्कृत भाषामें दाक्षिण शब्द के अर्थ दायां ऐसे हैं। पुराने समय में जब विद्यार्थी ऋषि कुलों में पढतेथे तो प्रति-दिन प्रातः समय उन के दाएं हाथ की दिशा को दाक्षिण दिशा कहते। तब से यह शब्द इस दिशा के लिये प्रयुक्त होता है। विद्यार्थियो क्या तुम सूर्य को नमस्कार करते हो? वह सर्व शक्ति का मूल है।" (भू-पृष्ठ विचार)

उक्त लेख में जो श्रीयुत जोशीजी बी. ए. ग्रन्थकर्त्ताने सूर्य्य को सर्व शक्ति का मूल दर्शाया है यह वही तत्व है जो इस मन्त्र के प्रथम भागमें हम वर्णन कर चुके हैं। हमें प्रसन्नता होती है कि उक्त विचार हमारे विचारों से मिलते हैं। नमस्कार शब्द पर

उक्त महानुभाव अधिक विचार करेंगें तो हमें आशा है कि उनको स्वयं विदित हो जायगा कि जड़ सूर्य्य का नमन उस के गुणों का यथार्थ उपयोग ही है जैसा कि ऋषि दयानन्दने वैदिक सिद्धान्त दर्शाया है।

बडोदा राज्य में पढाई जानेवाली त्रिवेदी वांचनमाला में एक स्थल पर पाठमें यह शब्द आते हैं कि " सूर्य ने पगे लागो " (सूर्य को पालागन करो) अर्थात् सूर्यको नमस्कार करो। सन् १९२४ ई० के आरंभमें एक विद्वत्परिषद बडौदा के विद्या खाते के अधिकारियों तथा विद्वानों की हुई थी जिसमें सबने सर्व सम्मति से यह निश्चय कियाथा कि आगामी संस्करणमें जड सूर्यको नमस्कार करनेवाले उक्त शब्द ग्रन्थकर्त्तासे कहकर निकलवा देने चाहिएं। इस विद्वत्परिषद में वैदिक आर्य, सनातनी आर्य जैन आर्य तथा मुसलमान बंधु सब थे। इस परिषद में हम भी थे। इस कार्य को देख कर हम मनमें कह रहे थे कि निरुक्त ने जो लिखा है कि वेदका यथार्थ अर्थ दर्शक तर्क ही है, उस सत्य की जय हो रही है।

युरोप के विद्वान् नमस्कार शब्द के ठीक व्यवहारको न समझकर पुराने आर्यों को दोष देते हैं कि वे सूर्य को ईश्वर समझ कर नमस्कार करते थे पर हमारी इस मंत्र संबंधी व्याख्यासे उनका यह भ्रम दूर हो सकता है।

प्रतीची दिग्वरूणोऽधिपतिः पृदाकूरक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यंवयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

जिस प्रकार पूर्व दिशा में गतिप्रदशक्ति और दक्षिण दिशा में विद्युत् का राज्य है, उसी प्रकार पश्चिम दिशा में चन्द्र का राज्य है। कोई कह सकता है कि हम पश्चिम दिशा को सूर्यास्त की दिशा क्यों न कहें ? इस के उत्तर में हम कहेंगें कि आप निस्संदेह ऐसा कह सकते हैं पर आप यह नहीं कह सकोगें कि पश्चिम दिशा में **सूर्य्य का राज्य** है। सब जानते हैं कि पूर्ण चन्द्र के दूसरे दिन जब उदय होते हुए चन्द्र कुछ घट जाता है और तृतीय के शुक्ल चन्द्र से बहुत ही बडा आकार तथा प्रकाशवाला होता है तिस पर भी उस दिन **कृष्णपक्ष** का आरंभ सर्वत्र विद्वान् मानते हैं। इस का कारण यह कि बालक की प्रगति वा उन्नति **जन्मदिन** से होती है न कि उसके पचासवें वर्ष से। इसी लिये शुक्लपक्ष की पहिली तिथि को यद्यपि चन्द्रकला एक झांके श्वेत धनुष से बढ कर नहीं होती, पर वह दिन जन्म वा उदय दिवस होने से शुक्लपक्ष के उन्नति बोधक नाम से प्रसिद्ध किया जाता है। ठीक इसी प्रकार, पश्चिम में अस्त होनेवाले सूर्य्य को कोई बुद्धिमान् उस दिशा का अधिपति स्वामी वा राजा नहीं कह सकता। यद्यपि सूर्य्य पूर्व में जन्म

ले कर दिन भर वहां ही नहीं रहता वा दीखता, तो भी उसको वा उसकी अग्नि आदि शक्ति को पूर्व दिशाका स्वामी मानते हैं। तात्पर्य यह कि जिस का उदय वा जन्म जिस दिशा में प्रतीत हो वही उसका देव वा स्वामी माना जावेगा, इस लिये चंद्रको हम पश्चिम दिशाका अधिपति वा देव कह सकते हैं। चंद्र के रूप तथा उदय का उत्तम वर्णन गुजराती की छटी पुस्तक में जो बंबई प्रान्त के सर्व सरकारी विद्यालयों में पाठ्य पुस्तक है इस प्रकार है "सर्वं आकाशी पदार्थोमां चंद्र घणोज आनंदकारी अने मोह उपजावनारो छे। दरेक महीनामां सुद पडवा ने दिवसे सुरज आथम्या पछी पश्चिम दिशामां झांखां तेजवाला सुन्दर अळाया जेवो ते देखाय छे।" (अर्थ) आकाश के सर्व पदार्थों में चंद्र बहुत ही आनन्दकारी और मोहित करने वाला है। प्रत्येक मासमें शुक्ल पक्षकी प्रथम तिथिको सूर्य्यास्त के पीछे **पश्चिम दिशा** में मन्द ज्योतिमय, सुन्दर धनुष् जैसा दीखता है।

श्री रामचन्द्र जब बालक थे तब किस प्रकार चांदको पकडने के लिये लालसा करते रहे। कविजन और मुनि लोग किस प्रकार चन्द्र ज्योति से आनंद उठाते रहे इसको सब जानते ही हैं। देखिये वेद मंत्र इस विषय में क्या कह रहा है।

(**प्रतीची**) पश्चिम (**दिक्**) दिशाका (**वरुणः**) चन्द्र (**अधिपति**) स्वामी है (**पृदाकू**) पूर्ण करने वाली (अपेन

आप को) अर्थात् चन्द्रकला (**रक्षिता**) रक्षक का काम करती है और (**अन्नम्**) अन्न तथा जल (इषवः) बाणवत् हैं। (**तेभ्यो नमो**) उन सबके लिए उत्तम कर्म (**अधिपतिभ्यो नम**) स्वामी के लिये उत्तम कर्म (**रक्षितृभ्यः नमः**) रक्षक के लिये उत्तम कर्म (**इषुभ्यो नम**) उन बाणोंके लिए उत्तम कर्म (**एभ्यो अस्तु**) इन सबसे लिए उत्तम कर्म हो (**योऽस्मान् द्वेष्टि**) जो हमसे द्वेष करता है (**यं वयं द्विष्मः**) जिस से हम द्वेष करते हैं (**तम्**) उस द्वेषीको (**वः**) इन (**अधिपति**) रक्षक तथा बाणों के (**जम्भेः**) दाढ वा सामर्थ्य में (**दध्मः**) हम छोड देते हैं।

निघंटु में जो प्राचीन वैदिक शब्द कोष है, अन्न के अर्थ जलभी दिए हुए हैं।

भावार्थः—उन सब के अनुकूल व्यवहार करो अर्थात् उत्तम कर्म वा सत्कर्म करो।

शब्दार्थ पर विचारः—

(१) **पृ पालने पूरणयोः**। इस धातु से दाकू प्रत्यय लगा कर पृदाकू शब्द सिद्ध होता है इस लिये पृदाकू का अर्थ है—पूर्ण करनेवाला। शास्त्री पं. मयाशंकर अंबाशंकरजी भी इस से सहमत हैं।

(२) **इन्द्रावरूण योरहं सम्राजोरव आवृणे। ता नो मृळात ईदृशे** (ऋग्वेद मं. १ अ. ४–सू. १७ मं. १)

"(इन्द्रावरुणयोः) इन्द्रश्च वरुणश्च तयोः सूर्य्याचन्द्रमसो वरुण इति पदनामसु पठितम् । निघंटु ।५। ४।। "

मैं जिन (सम्राजोः) अच्छी प्रकार प्रकाशमान (इन्द्रावरुणयोः) सूर्य और चन्द्रमा के गुणों से (अवः) रक्षा को (आवृणे) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं । (देखो ऋग्वेद भाष्य)

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः।। (ऋग्वेद मं. १ अ० ४ सू. १७ मं. ५)

"(वरुणः) जलं वायुश्चन्द्रो वा । " अर्थात् जल वा वायु वा चन्द्रमा । **अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूत दक्षः।**" (ऋ. मं. १ अ. ६ सू. २४ मं. ७)

"....(वरुणः) श्रेष्ठः " अर्थात् श्रेष्ठ । यजुः अ. ३४ मं. ५७ में वरुण शब्द के अर्थ जल वा चन्द्रमा किये गए हैं । तथा यजु० अ० ३९ मं० २ में वरुण के अर्थ जल समुद्र के हैं। **वरुणः** ।। २ ।। **वरुणो वृणोतीतिसतः** (निरुक्ते दैवतकाण्डम् ५ । ४) **वरुणः** ।। २ ।। " कस्मात् " वृणोतीति सतः "

भावार्थ—जो स्वीकार किया जावे वा स्वीकार करने वाला वरुण क्यों हुआ—स्वीकार करने वाला होनेसे -

उक्त निरुक्त तथा ऋषि दयानंद कृत ऋग्वेद भाष्य के प्रमाणास यह सिद्ध हो गया कि जो श्रेष्ठ वा ग्रहण करने योग्य हो वह वरुण है । ईश्वर और चन्द्र दोनों ही इस के अर्थ सर्वत्र हो

सकते हैं। ऊपर ऋग्वेदभाष्यसे तीन मंत्र दृष्टान्तरूपसे दिखाए गए हैं जिनमें वरुणशब्दके अर्थ प्रसंगानुसार व्याकरण रीतिसे स्वयं ऋषि दयानन्दजीने चन्द्र के किये हैं। इस लिये प्रतीची दिग्वरुणो इस मंत्र में हमने जो वरुण शब्द के भौतिक अर्थचन्द्र के किये हैं वह सब प्रकार से युक्त हैं। सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास में "वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः" यह लेख ऋषि दयानंदजी का है इस का अर्थ भी यही हुआ कि वरुण नाम वर अथवा श्रेष्ठ पदार्थ का है। भारतीय तथा इंग्लैण्ड के सब **कविजन** चन्द्रको सुंदरता और हर्ष का कारण मानते हैं अतः निस्संदेह चंद्रमा श्रेष्ठ संज्ञा धारी है।

बडोदा राज्य के एक ग्राममें एक चांदनी रात को स्वर्गस्थ भारत भूषण श्री **रमेशचन्द्रदत्त** दीवान (अमात्य) बडोदा सैर कर रहे थे। एक तहसीलदारको पता लगा कि दीवान साहेब बिना बत्ती (लैम्प) के जंगलमें घूम रहे हैं। उसने झट एक अनुचरको लैम्प देकर भेज दिया, जैसा कि शिष्टाचारथा। श्री दत्त महोदयने अनुचर को लैंप वापस ले जाने को कहा और कहने लगे 'कि इस महान् सुन्दर चन्द्र ज्योतिमें कोईभी कृत्रिम प्रकाश लाना मानो सुंदरताको बट्टा लगाना है। अहो कैसी उत्तम तथा आनन्दवर्धक यह चन्द्र ज्योति है।" इसी लिये तो परिक्रमा मंत्र में वरुण शब्द वास्तव में चन्द्र का बोधक है। पश्चिम दिशा में चन्द्र का उदय होता है यह भारतीय स्त्रियें गामों में रहने वाली

भी भले प्रकार जानती हैं। प्रत्येक गांव में प्रत्येक पुरुष वा स्त्री शुक्लपक्ष की पहली तिथि के दिन पश्चिम की तरफ नवीन चंद्र-के दर्शन करने के लिए घरों से बाहर आती हैं। बडोदे में शुक्ल पक्ष की द्वितीय तिथि को जिसे गुजराती में 'बीज' कहते हैं श्रीमंत बडोदा नरेश की तरफ से दो तोपें इस बात की घोषणा के लिये कि चन्द्र दर्शन होसकेगें शाम को छूटती हैं। इन तोपों के सुनते ही अनेक नरनारी पश्चिम दिशा में चन्द्र के दर्शन कर ईश्वर का धन्यवाद करते हैं कि उसने हमारे सुख के लिये इस को बनाया है।

चन्द्र में विचित्र गुण यह है, जैसा कि अन्यत्र वेद में कहा है 'जायते पुनः" अर्थात् हर मास नया जन्म लेता है। चन्द्र की कलाएं किस प्रकार बढती हैं यह प्रत्येक मनुष्य अनुभव से जानता है। इस वेद मंत्र में इस की कला को रक्षा करने वाली कहा गया है। चन्द्रकला बढती हुई न केवल श्वेत ज्योति और आह्लाद को देतीं हैं किन्तु जल में गति उत्पन्न कर उस को अमृतमय अर्थात् रोगनाशक बना देती हैं। गिलोय आदि सोम-लता औषधियों में ज्वरहरण के जो गुण उत्पन्न होते हैं उस का मुख्य कारण चन्द्रकला ही हैं।

अन्न आदि में उत्तम रस की वृद्धि करना चन्द्र का ही मुख्य कार्य है। चरक सुश्रुत में यह बात भली प्रकार दर्शाई गई है कि

अन्नादि में रस की वृद्धि चन्द्र द्वारा ही होती है। युवा स्त्रियें आरोग्य होने की दशा में शुक्लपक्ष में ही प्रायः मासिक धर्म्म से युक्त होकर अपने शरीर के विकारों को शुद्ध करती हैं। चन्द्र के कारण अन्न आदि भोग्य पदार्थ बढते हैं, जिनको खाकर सर्व मनुष्य तथा पशु प्राणी जीवन स्थिर रख सकते हैं।

आयुर्वेदानुसार दक्षिणायन काल के छ मासमें चन्द्रका बल बडा होनेसे मानो चन्द्रका राज्य होता है और इस कालमें सर्व प्रकार के अन्नफल और रस सर्वत्र भारी संख्या में उत्पन्न होकर प्रजाको आनंदित करते हैं। जो लोग विषय विलास के कारण केवल **स्वाद** कोही लक्ष्य में रखकर भूखसे अधिक अन्न फल और मिष्ट रस सेवन कर लेते हैं उनको यही अन्न बाण के तुल्य दंड देनेवाले प्रतीत होने लगते हैं। जो मनुष्य अन्नका प्रयोजन समझकर स्वास्थ्य रक्षा के निमित्त उसका युक्ति से मर्यादापूर्वक सेवन करते हैं उन को अन्नकभी दंड देने वाला बाण प्रतीत नहीं होता, किन्तु सदैव रक्षक बाण अनुभव होता है। जो लोग उत्तम कूपजल को सूर्य चन्द्र की ज्योति में रख पी सकते हैं उनका भाग धन्य है।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्व शंभुवमापश्च विष्वभेषजीः॥२०॥

ऋ० मं० १। अ० ५। सू० २३। मं.। २०॥

इस मंत्र में बतलाया गया है कि सोम (चन्द्रमा) मनु-

ष्य के जलों के बीच सब रोग निवारक गुण और सर्व सुखकारी गति को प्रगट करता है। (देखो ऋषि दयानंदकृत वेदभाष्य)

इससे पाया गया किः—

(१) जलमें रोग निवारक गुण को चन्द्रमा पैदा करता है। इसी लिये आर्युर्वेदमें लिखा हुआ मिलता है कि वैद्य लोग उस जल के पीने का विधान करते हैं जो दिनभर सूरजकी धूप में और रातभर चांदनीमें रहा हो।

(२) इसी मंत्र से दूसरी बात यह निकलती है कि चन्द्रमा जल को गति देता है।

बंबई आदि स्थलोंपर रहनेवाले जानते हैं कि किस प्रकार समुद्र में ज्वारभाटा (**भरती और ओट**) चन्द्रके कारण नियम पूर्वक होता है।

अमीयऋक्षानिहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति।

(ऋ० मं० १ अ० ६ सू० २४ मं० १०)

" हम पूछते हैं कि जो ये (अमी) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (ऋक्षाः) सूर्य्य चन्द्र तारका दिन नक्षत्र लोक किसने (उच्चाः) ऊपर को ठहरे हुए (निहितासः) यथायोग्य अपनी अपनी कक्षा में ठहराये हैं। क्यों ये (नक्तम्) रात्रि में (ददृश्रे) देख पडते हैं और (दिवा) दिन में (कुहचित्) कहां (ईयुः) जाते हैं।

इन प्रश्नों के उत्तर जो (वरुणास्य) परमेश्वर वा सूर्य्य के (अदब्धानि) हिंसारहित (व्रतानि) नियम वा कर्म हैं कि जिनसे ये ऊपर ठहरे हैं (नक्तं) रात्रि में (विचाकशत्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होते हैं। ये कहीं नहीं जाते न आते हैं किन्तु आकाश के बीच में रहते हैं। (चन्द्रमाः) चन्द्र आदि लोक (एति) अपनी अपनी दृष्टि के सामने आते और दिन में सूर्य्य के प्रकाश वा किसी लोक की आड से नहीं दीखते हैं, ये प्रश्नों के उत्तर हैं" [देखो ऋषि दयानन्द भाष्य]

चांद पृथ्वी के इर्दगिर्द घूमता है, इस लिये इस को पृथ्वी का उपग्रह कहते हैं। यह पृथ्वी के गिर्द लगभग अट्ठाईस दिन में एक परिक्रमा पूरी करता है।

जब चांद, सूर्य्य और पृथ्वी के बीच आता है तब चांद की छाया सूर्य्य पर पडती है तब सूर्य्य ग्रहण होता है। * जब जब पृथ्वी सूर्य्य और चांद के बीच में आजाती है तो चांद सूर्य्य की सामनी दिशा में होता है उस समय पृथ्वी की छाया चांद पर पडती है और चंद्रग्रहण होता है। चन्द्र शक्ति जैसा कि सुश्रुत में वर्णन किया गया है अन्नों में रस को उत्पन्न करती है और अन्नों में जो मिठास गुण आता है उसका कारण जल अंश और जल अंश का प्रेरक निस्संदेह चन्द्रमा है। ईश्वरने अपनी महान् कृपासे

* वास्तव में प्रकाशमान पदार्थपर छाया नहीं पडती किन्तु हमारी दृष्टि रुकती है।

इस चन्द्रको सर्व देशी और सर्व हितकारी बनाया है। भूलोक के जिन जिन देशों में मनुष्यजाति बसती है उन सब देशों में नाना प्रकारके अन्न उत्पन्न होते हैं। आजकल पश्चिमी भूगोल शास्त्री कहते हैं कि अमुक अमुक देश में अमुक अमुक प्रकार के अनाज उत्पन्न होते हैं पर धन्य थे हमारे प्राचीन आर्य ब्राम्हण जिन्होंने पृथ्वी के नाना देशोंमें जाकर उन उन देशों की विशेषताओं को निरीक्षण कर उन देशों के अमर नामकरण संस्कार कर डाले। दृष्टान्तकी रीतिसे देखिए कि जिस द्वीप में 'यव' अधिक उत्पन्न होते हैं उस द्वीप का नाम **यवद्वीप** जिसका बिगड कर **जावा** आज तक चला आता है रखा। अरब देश में जो हरी भूमि है उसका नाम **उद्यान** रखा उसका बिगाड आजतक अदन सब जानतेही हैं। क्षीरसागर लालसागर, पीत सागर उन्होंने जिनके नाम रखेथे उनको आज व्हाइट सी, रेड सी और येलो सी ही तो कहते हैं। मिसरकी नील नदी और अफरीकाकी चन्द्रगिरी के नाम आज तक नाइल और मून्स माउनटेन चले आ रहे हैं। इस मंत्र से अन्न का महत्व विदित हो रहा है पर आर्षकाल के लोप होने से आसुरी प्रकृति के लोगों ने अन्न के साथ मांस खाने का जहां प्रचार कर डाला वहां उन यज्ञों में जिन में अन्न घी तथा सुगन्धित रोगनाशक पदार्थ डाले जाते थे मांस डालना आरंभ कर दिया। मांस का यज्ञों से कोई संबंध नहीं यह बात यहां अप्रासंगिक न होगी अतः हम निम्न लेख से दिखाना चाहते हैं कि वैदिक यज्ञ हिंसा रहित होते थे।

यज्ञ शब्दके अर्थ निरुक्तने संगतिकरण, देव पूजा और दान किये हैं। परन्तु जब निरुक्त नहीं बना था तब इसके अर्थ स्वयं यजुर्वेद के प्रथम मंत्रानुसार "श्रेष्ठतमकर्म" प्रसिद्ध होंगे, यह अनुमान् युक्त प्रतीत होता है। आजकलके नवीन संस्कृत कोषों में यज्ञ के मूल अर्थ 'भाव' जो संगति करण का भाषान्तर है मिलते हैं। जहां यजुर्वेदके प्रथम मंत्र में **श्रेष्ठतमकर्म** यज्ञ का पर्याय है, वहां उसी मंत्र में "पशूनपाहि" अर्थात् **पशुओंकी रक्षा कर**—यह भी जताया गया है। अतः कहा जा सकता है कि वैदिककालमें यज्ञ संबंधी कर्मों में पशुओंकी अवश्य रक्षा होती होगी।

पौराणिक काल में अश्वमेधादि के नाम से जो कलंक वैदिक यज्ञों को लगाया गया है, वह प्रमाण दृष्टि से बिलकुल निर्मूल है। इसकी पुष्टिमें हम यजुर्वेद के पुराने व्याख्यानरूप ग्रन्थ **शतपथ ब्राह्मणसे** निम्न लिखित वाक्य प्रस्तुत करते हैं। आशा है कि आर्य्य सज्जन इस का मनन करेंगे।

राष्ट्रंवाऽअश्वमेधः। राष्ट्रऽएते व्यायच्छन्ते येऽश्वं रक्षान्ति तेषां यऽउदृचं राष्ट्रैणैव ते राष्ट्रं भवन्त्यथये नोदृचं गच्छन्ति राष्ट्रात्ते व्यवच्छिद्यन्ते तस्माद्राष्ट्रयश्ववमेधेन यजते परा वाऽएष सिच्यते योऽबलोऽश्वमेधेन जयते यद्यमित्रा अश्वं विन्देरन्यज्ञोऽज्ञोस्य विच्छिद्येत पापीयान्स्याच्छतं कवचिनो **रक्षन्ति** यज्ञस्य संतत्याऽअव्यवच्छेदाय न पापीयान्भवत्यथान्यमानीय प्रोक्षेयुः सैव तत्र प्रायश्चित्तिः॥

शत० १३–१–६–३.

अर्थः—राष्ट्र का नाम अश्वमेध है। राज्य में जो यह काम करते हैं वह अश्वमेध है। राज्य में जो यह काम करते हैं वह अश्व की **रक्षा** करते हैं, उनमें से जो ऋचा पर नहीं चलते वह राज्य से भ्रष्ट होजाते हैं, इसलिये राज्य की इच्छा करने वाला अश्वमेध (राज्य संगठन) के साथ यज्ञ करता है उसका बहुत देर से अभिषेक होता है, यदि मित्रों से रहित अश्वमेध (राजयज्ञ) करे तो उसका यज्ञ नाश हो जावे, यदि राजा पापी होजावे तो सैंकडों महावीर यज्ञ की रक्षा करें, पापी नहीं होना चाहिये, उसके स्थान पर दूसरे का अभिषेक करना चाहिये यही इसका प्रायश्चित्त है।

अब हम उक्त ग्रन्थसे ही गोमेध संबंध का एक वाक्य प्रस्तुत करते हैं।

अथ गौः। प्राणमेवैतयात्मनस्त्रायते प्राणो हि गौरन्नँ हि गौरन्नँ हि प्राणस्ताँ रुद्राय होत्रे ददात्। शत० कां० ४-३-४-२५

अर्थः—गौके विषयमें प्राणही (गौ है)। (मनुष्य) इससे अपनी रक्षा करता है, प्राणही गौ है, अन्नही गौ है गौरूपी अन्नही प्राण है उसको रुद्र (बलवान्) होता को दिया।

इससे यह बात सिद्ध हुई कि **गो** शब्दके अर्थ **शतपथ** में **अन्न** और **प्राण** हैं।

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने " फ़िज़िकल बेसिस आफ़ रिलिजन

"Physical Basis of Religion" अर्थात् 'धर्मका भौतिक आधार' नामक ग्रन्थमें साफ़ लिखा है कि **यज्ञ** शब्दके अर्थ प्राचीनकाल में पशुहिंसारूपी बलिदानके नहीं थे किन्तु **कर्म** वा **कार्य** के थे। इसके अतिरिक्त **वाचस्पत्य बृहदभिधान** नामक संस्कृत कोषमें जो पंडित श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पतिनें बनाया है, **मेघ** तथा तादृश अर्थवान् शब्दके संबंधमें जो कुछ लिखा है वह नीचे दिया जाता है। इससे मालूम हो सकेगा कि लौकिक संस्कृतमें **मेघ** शब्द **बुद्धि, आधार,** तथा **मारने** के अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। यही कोषकार अश्वके संबंधमें लिखते हैं कि:—

अश्वो अश्नुते व्याप्नोति मार्गम् अर्थात् जो मार्गको व्याप्त करे, उसका नाम **अश्व** है। जब लोग इस धात्वर्थको छोड़ बैठे और मेघके भी दो अन्य अर्थ भूल गये तब वामलीला अर्थात् यज्ञमें पशु मार कर डालनेकी प्रथा चली। दक्षिणमें पौराणिक लोग सोमयज्ञ के नामसे बकरेको घूंसे मार मारकर यज्ञमें डालते हैं। उस समय यजुर्वेदका एक मंत्र पढ़ते हैं जिसमें यह पाठ है:—

वाचं ते शुन्धामि....चारित्रांस्ते शुन्धामि

यह मंत्र वास्तव में गुरुके शिष्य संबंधी धर्मका बोध कराता है।

महर्षि दयानन्दजीने जो इसका उत्तम भाष्य किया है उसका

खंडन कोई भी वामी वा पौराणिक पण्डित आज तक नहीं कर सका। मंत्र में कहा गया है कि:—

"मैं तेरी वाणीको शुद्ध सामर्थ्य युक्त करता हूं। मैं तेरे चरित्रको शुद्ध सामर्थ्य युक्त करता हूं।"

भला इस मंत्रमें कौनसा शब्दहै जिससे किसी मनुष्य वा पशु के मारने का लेशमात्र भी अर्थ निकलता हो? मंत्र तो साफ़ कह रहा है कि मैं (गुरु) (तेर) शिष्यके चरित्रको ठीक बनाता हूं। जब तक विद्वान् लोग देश में घर घर महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य की कथा नहीं सुनावेंगे, तबतक भारत वर्ष और उसके साथ साथ सारे संसारकी धार्मिक उन्नति होनी कठिन है।

आप्टेकृत कोष में **प्रती** शब्द के अर्थ—**पीछे जाना** वा पीछे आना दिये हुए हैं और उसी में कोषकारने प्रतीचीके अर्थ पश्चिम दिए हैं और प्रतीची-ईश के अर्थमें लिखा है कि यह वरुणका नाम है।

इस लिये जो मनुष्य पूर्वाभिमुख बैठा है उस के सीधे हाथ को दक्षिण दिशा और पीछे जानेवाली तरफ अर्थात् उसके पीछे का वा उस की पीठ को जो दिशा होगी, उसी का सार्थक उत्तम नाम प्रतीची-दिक् वा पश्चिम दिशा समझिये।

इस दिशा में उदय होनेसे दिक्पति चन्द्र सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। इस बातका उत्तम वर्णन यजु० अ० १८ मं० ४० में इस प्रकार पाया जाता है।

सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिचन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा। (यजु० अ० १८ मं० ४०)

अर्थः -जो (सूर्य्य रश्मिः) सूर्य्यकी किरणोंवाला (सुषुम्णः) जिससे उत्तम सुख होता (गन्धर्वः) और जो सूर्य्यकी किरणोंको धारण किये है वह (चन्द्रमाः) सब को आनन्दयुक्त करनेवाला चन्द्र लोक है (तस्य) उसके जो (नक्षत्राणि, अश्विनी आदि नक्षत्र और (अप्सरसः) आकाशमें विद्यमान् किरणें (भेकुरयः) प्रकाश को करनेवाली (नाम) प्रसिद्ध हैं, वे चन्द्रकी अप्सरा हैं (सः) वह जैसे (नः) हम लोगों के (इदम्) इस (ब्रह्म) पढानेवाले ब्राह्मण और (क्षत्रम्) दुष्टों को नाश करनेहारे क्षत्रिय कुलकी (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उक्त उस प्रकार के चन्द्रलोकके लिये (वाट्) कार्यानिर्वाहपूर्वक (स्वाहा) उत्तम क्रिया और: (ताभ्यः) उन किरणों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तुम लोगों को प्रयुक्त करने चाहिये।" (वेदभाष्य)

सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमागन्धर्वइत्यपि निगमो भवति सोपि गौरुच्यते। निरु० अ० २ खं० ६।

इस मंत्र में चन्द्र के स्वरूप, उस के प्रकाश और नक्षत्रादि में उसकी गति का पाठ किस उत्तमता से दिया गया है वह प्रत्येक बुद्धिमान् विचार कर सकेगा। चन्द्र का भारी संबंध अन्न अर्थात्

जल तथा अनाज आदिसे है यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है, वैदिक निघंटु के पृष्ठ ४ पर ६४ संख्यामें अन्नम् शब्द आया है और वहां पर १०१ शब्द, जिसमें उदक अर्थात् जल वाची लिखे हैं। अन्नम् शब्द के दूसरे अर्थ अनाजके बच्चा बच्चा जानता है। अन्न शब्द अद् धातु से जिस के अर्थ खाने के हैं बना है। खाद्य वा भक्षणीय पदार्थ वा भोजन के पदार्थों का नाम इस लिये अन्न है। इस समय युरोप तथा अमेरिका के सब ही मुखिया डाक्टर एक मत से मानते हैं कि चूंकि मनुष्य की आकृति बन्दरोंसे मिलती है और दांतही एक मात्र भोजनके प्रकार के सूचक हैं और बन्दर तथा मनुष्य के दांत समान् आकृति के हैं, इस लिये बन्दरों समान मनुष्य मांस खानेवाला प्राणी नहीं किन्तु अन्न खानेवाला है।

१. सब प्रकार के गेहुं जौ चावल बाजरा मक्की चना आदि।

२. सब प्रकारकी दालें–मूंग, उर्द, मटर, लोबिया, तुअर, अरहर, आदि।

३. सब प्रकार के फल आम अनार, केले गन्ना, शकरकंदी, अमरूद, सेब, अंगूर, द्राख, खजूर, छुहारा, मुनक्का, किशमिश, रंगतरे, लीची, जामन, बेर, अंजीर, फालसा, आडु, अलूचे, खिरनी, सीताफळ, रामफल, खरबूजे, तरबूज, सरदा, गरमा, बग्गूगोशा, खुरमानी, नाशपाती, लिंबु, बटंक, अनानास, कठल, संघाडा, कसेरु, शाहतूत, लोकाठ, चीकू, इ०

४. तिल, नारीकेल (नारियल) बादाम, खाजा (काजु), मोंगफली, चारोली, पिस्ता, अखरोट, सरसों, खरबूजागिरी, तरबूजगिरी, कद्दूगिरी इत्यादि

५. शाकभाजी; पटोल, (परवल), ज़िमीकंद (सूरन) ककोडा, घुईयां (अरबी), पिंडालू, (कचालु) भिंडी, मुंगतोरी, टींडे, घिया तोरी, (गलका) लौकी (दूधी) काशीफल, (कद्दु), कारेला, बंदगोभी, गाजर, मूली, सलगम, आलू, भसींडे (कमलमूल) पालक, मेथी, सोये, हराधनिया, चौलाई, (तांदरजा), बैंगन, लालबैंगन, (टमाटर), गिलोडे, मटर, चना, फूलगोभी, करमकासाग, गवारफली सरसोंका साग, रतालु, आमला इत्यादि ।

मनुष्य को यदि रोटी वा चावल दाल, शाक, नारियल वा तिलका तेल तथा मौसमी फल मिलते रहें तो वह आयुभर इसपर निर्वाह कर आरोग्य तथा बलवान् होसकता है । गुजरात और बंबई प्रान्त में लोग दुपहर को बाजरे की रोटी और तुवर की दाल जिस में पकेत समय थोडा सा तिलका तेल डाल लेते हैं खाया करते हैं और रातको दाल चावल और दूधी आदि एक शाक वह भी तेल में छौंका हुआ खाते हैं ।

दूध, घी, खाये हुवे इन्हें महीनों गुजर जाते हैं । कभी किसी विवाह आदि उत्सव पर मिष्टान्न में घी खाते हैं । सोलह वर्षसे में

देख रहा हूं कि बड़ोदा अन्त्यज आश्रम में लडके लडकियोंको जो भोजन श्रीमंत महाराजा सा० की तरफसे मिलता है उस में प्रातःकाल बाजरेका आटा, तुवरकी दाल, और थोडासा तिलका तेल मिलता है। शामको खिचडी (दाल चावल) छ मासा घी, एक मौसमी शाक तथा तेल दिया जाता है। इस पर यह लडके लडकियां सब प्रकारसे आरोग्य और बडे बलवान् होते हैं। मौसमी फल जैसे कि आम, केला, आदि ऋतु ऋतु पर कभी कभी दिये जाते हैं। चित्तौड में वीर राजपूत उत्तम पुष्ट तथा लम्बे शरीरवाले पठानों समान होते हैं। इनकी खोराक जौकी रोटी दाल शाक और दूध, घी, तेल, छाछ आदि होती है। पंजाबमें सिख जाट आदि वीर प्रजा गेहुं चना, उडदकी दाल फल छाछ पर जीवन व्यतीत करती है। इनके शरीर बडे लम्बे,पुष्ट और महा बलवान् होते हैं। संसार भरकी ग्रामीण प्रजा सब जगह प्रायः अन्न, फल, दूध, छाछ, घी, तेल पर निर्वाह करती है। बडे बडे नगरोंके धनी लोग ही सब जगह संसार भर में अन्न फल दूध घी तेलके साथ नाना प्रकार के पशु मांस, मछली, मुरगी, मदिरा अन्डे आदि खाते हैं। यही मांस खानेवाली प्रजा ग्रामीण लोगों के अपेक्षा सदैव रोगी, निर्बल रहती है यह बात निर्विवाद है, इस लिये जरूरत है कि मनुष्य जाति का वह भाग जो नगरोंमें रहता है अभक्ष्य पदार्थ मांस को चाहे वह पशु पक्षी वा, मछली का हो त्याग कर अन्न आशी बन कर पूर्ण आरोग्यता तथा शारीरिक बलको धारण कर सके। मांस मनुष्य का

स्वाभाविक आहार नहीं इस लिये इसको खानेवाला अस्वाभाविक पदार्थ खाकर उसका परिणाम शारीरिक रोग मोल लेता है मांस खानेवाला हिंसा पाप भी करता है। चोरी करना क्यों पाप है, क्या दूसरेका धन हमारे लिये जहर बन जाता है? नहीं कभी नहीं क्योंकि जिसका धन चुराया जाता है उसको शारीरिक तथा मानसिक कष्ट पहुंचता है इस लिये चोरी करना महा पाप है। ठीक वैसेही मांस के विषयमें समझ लीजिये। यदि कोई कहे कि मांस खाये बिना संग्राम में विजय प्राप्ति नहीं होती तो यह बात भी ठीक नहीं, कारण कि मराठा वीर सिपाही और सिक्ख वीर सैनिक युद्ध के समय चने और गुड़ पर निर्वाह करके अपनी अपूर्व वीरता सिद्ध कर चुके और अभी भी कर रहे हैं। विदित रहे कि जिस सेना के पास अधिक उत्तम शस्त्र होंगें उनकी ही जीत होगी भूमि पर खडे हुये मांस खाने वालों की सेना पर यदि ऊपर से विमान में बैठ कर कोई अन्न आशी बंब गोले फेंके तो क्या यह मांस खाने वाले उसको जीत सकते हैं? नहीं कभी नहीं। वीरता मन से आती है और उत्तम शस्त्र विजय का भारी साधन हैं।

चने और गुड खानेवाले वीर सिक्खों जाटों और बहादुर मराठोंने इतिहास में यह बात सिद्ध करदी है कि अन्न खानेवालों की रणभूमिमें जय हो सकती है। यही तत्त्व निम्न लिखित वेद मंत्र में दर्शाया गया है कि अन्न आहारी सेना संग्राम में विजय प्राप्त कर सकती है।

यजुर्वेद अ० १८ मंत्र ३०, ३१, ३२, ३३ तथा ३४ में अन्न खाने का विधान है और ३३ मंत्र के भावार्थ में निम्न लिखित वचन है कि:—" जितने इस (ीपर पदार्थ हैं उन सब में अन्न ही अत्यंत प्रशंसा के योग्य है जिस से अन्नवान् पुरुष सब जगहविजय को प्राप्त होता है।

इसी १८ वें अध्यायके ३६ वें मंत्र में (पयः) अर्थात्:- जल फलों के रस और दूधके पीनेका विधान है।

यजुर्वेद अध्याय ३४ मंत्र पांच में दीर्घ आयुका कारण मांस का न खाना बताया है।

मांस शब्द के अनेक यौगिक प्राचीन सत्य अर्थः— वैदिक साहित्य के पण्डित जानते हैं कि मांस शब्द के अनेक यौगिक अर्थ हैं। इस लिये वेदों में जहां जहां मांस शब्द है वहां पर उस के केवल एक ही अर्थ लेने और प्रसंग तथा मूल ग्रन्थ का उद्देश को न समझना कभी ठीक नहीं हो सकता अथर्ववेद में **यथा मांसं यथा सुरा** का मंत्र विद्यमान् है जिस के अर्थ इतने स्पष्ट हैं कि प्रत्येक मनुष्य समझ सकता है कि मांस को मदिरा के समान दुष्टकोटि में रखा है। इस के विपरीत यदि कोई मंत्र किसी वेद संहिता का ऐसा हो जिस से युरोप के मांसभक्षी संस्कृतज्ञ अपनी वा रुचि के अनुसार उस के युक्ति तथा निरुक्त प्रमाण से रहित कर के वेद को कलंक वा दोष देना चाहें तो उस दशा में हमें वेद के यथार्थ अर्थ युक्ति और निरुक्त के सत्य प्रमाण से करके

संसार को दिखाना होगा कि वेद में परस्पर, विरोध नहीं। जब यजुर्वेद का पहिला ही मंत्र " पशून् पाहि " की घोषणा कर रहा है तो वेद का सिद्धान्त पशुबध करने वा मांस खाने का कभी नहीं हो सकता। इस समय यदि संसार में **निरुक्त** से अति प्राचीन वैदिक कोश का प्रचार होता तो आर्य्यजनता और युरोपियन पण्डितों को भी वेद के पवित्र तथा सत्य सिद्धान्त समझने में कोई अडचन न आती। जो संस्कृतज्ञ जन मांस शब्द के केवल एक ही अर्थ पशु मांस ले रहे हैं उन को **निरुक्त** के निम्न वचनों पर पूर्ण ध्यान देकर वैदिककाल में प्रवेश करना होगा।

मांसं माननं वा, मानसं वा, मनोऽस्मिन् सीदत्तीति वा।

(१) मांस—" मांसके अर्थ क्या हैं ? मान्य अर्थात् प्रतिष्टित पुरुष के लिये जो लाया जाता है वह मांस कहलाता है।

(२) मानसं—जो शुभ मनसे लाया जाता है उसका नामभी मांस है।

(३) जिसमें मन खिचता है, अर्थात् रोचक भोजन।

युरोप के कई पक्षपाती विद्वान् वेदोंमें गो आदि पशुहत्या का विधान समझे बैठे हैं पर ये उनकी भूल है कारण कि यजुर्वेद अध्याय १ मंत्र एक में **पशुन्पाहि** ये शब्द आये हैं। इसमें सब पशुओं की रक्षा का विधान है हिंसाका नहीं, और यजुर्वेद अध्याय २० मंत्र १८ में गो जातिको **अघन्या** अर्थात् मारनेके

अयोग्य दर्शाया गया है तिसपर उनका हठ करना सत्य नहीं।

दालों में उत्तम विचित्र गुण हैं। उर्द विना दले पकाने से पूर्ण गुण देते हैं। उर्द के छिलके में पौष्टिक लवण रहता है। पंजाब के सिक्ख अपने लंगरों (रसोई) में विना दले उर्द बनाते हैं जो अधिक स्वादिष्ट और दालकी अपेक्षा अधिक पुष्ट होते हैं। उर्द की दाल सदैव छिलके वाली खानी चाहिये इस में विना छिलके वा धुली हुई दाल से अधिक पौष्टिक तत्त्व रहता है।

कालेचने, रवां, लोबिया, मूंग विना दले पकाने से अधिक स्वादिष्ट तथा अधिक गुणकारी हैं। सफेद से लाल गेहूं अधिक गुणदायक हैं। मशीन का आटा कबज़ीकारक है। हाथ की चक्की पनचक्की वा बैलचक्की का आटा पूर्ण गुणदायक है। मोटी छलनी से आटा छानना चाहिये। मोटे आटे से बढ कर कोई पौष्टिक वस्तु संसार में नहीं। पंजाब में उर्द की दाल को महादाल कहते हैं। भूलोक में काठियावाडी तथा जेष्ठक्षात्रिय (जाट क्षत्रिय) उर्द की दाल खाने के कारण ही सब से लंबे होते है।

चावलों के महत्व को कई लोग कम समझते हैं। चावलों को संस्कृत में मुनिअन्न अर्थात् दिमागी काम करने वालों के लिये उत्तम अन्न कहा गया है सो बिलकुल ठीक है। चावल दूध वा दाल के साथ मिलाकर खाने से पूर्ण पुष्ट आहार का काम देते हैं। जापानी प्रजा चावल खाने वाली है,

उनकी वीरता जगत् प्रसिद्ध है। चावलों को ऐसी रीत से पकाना चाहिये कि पक जाने पर पानी शेष न रह जावे। जो लोग चावलों की पीछ निकाल कर फैंक देते हैं वह चावलों का सार ही फैंकते हैं यह जानियेगा। इस की पीछ फैंकने की जरूरत नहीं। यदि अधिक पानी डालने से पीछ बन गई है तो खानी चाहिये न कि फैंकनी।

मई १९२४ के मौडर्नरिवियू में एक उत्तम लेख द्वारा यह बात दर्शाई गई हैं कि देशी जंत्रों वा घर में छडे हुए चावल, उन चावलों से अधिक पुष्टिदाता हैं जिन पर से मशीन द्वारा छिलका उतारा जाता है। पश्चिमी पदार्थ विज्ञानी अब अपनी भूल सुधारने लगे हैं।

केला यह फल बडा स्वादिष्ट तथा पुष्टिकारक है। उत्तर हिंद में जो भ्रम फैल रहा है कि इसको खाने से भूख मारी जाती वा पाचनशक्ति मंद हो जाती, यह बात ठीक नहीं। प्रायः लोग भरे पेट वा भूख न होने पर केला वा किसी भी फल को खावेगें तो वह कैसे लाभ दे सकता है।

बडोदा कन्या गुरुकुल के आचार्य्य कविश्री **पण्डित महाराणीशंकरजी** का कथन है कि "अफरीकाखंड के योगंडा देश में लोग पुराने समय में एक मात्र केला फल खाते थे। अब भी इस को फल रूप में खाते तथा सुखा कर इस की रोटी बना खाते हैं। यह लोग बहुत ही वीर हैं।"

मैसोपोटेमिया (टर्की) में लोग **खजूरफल** ही खाकर जीवन व्यतीत करते हैं। खजूरें फलरूप में खाते हैं और इसके अतिरिक्त खजूरों को सुखा कर बेचते तथा उन का ही आटा बना रोटी बनाते हैं। मुसलमान होने के कारण यह बकरईद के अवसर पर मांस खा लेते हैं पर एक मात्र खजूरें ही इन का भोजन है। यह लोग वीर होते हैं। श्रीयुत **बाबू विश्वेश्वरचन्द्रजी** गुप्त, का कथन है कि इस प्रजा को हम खजूर आशी प्रजा कहें तो अति उक्ति नहीं होगी। खजूरें भी उस देश में अनेक प्रकार की रसीली तथा स्वादिष्ट होती हैं। खजूरफल भी बडा पुष्टिदायक है। स्वर्गवासी वैद्यराज पं. श्री सीतारामजी शास्त्री रावलपिंडी निवासी यात्रा में और फलों के साथ केला जरूर खाने के लिये रखा करते थे और उन का कथन था कि यह पूडी कचोरी हलवे का काम देता है।

आर्य्यसमाज रत्न स्वर्गवासी महात्मा श्री दुर्गाप्रसादजी मालिक विरजानन्द यंत्रालय लाहौर ३० वर्ष तक नाना प्रकार के फल, अनाज तथा शाक खाकर रहे। दूध, घृत, नमक तक उन्होंने छोड रखा था मांसमदिरा अंडा आदि तो उन्होंने कभी नहीं खाया। उन का स्वास्थ्य उत्तम और वह दीर्घजीवी होकर स्वर्गवास हुए।

आम की ऋतु में उत्तरीय भारत के ग्रामों में लोग कई कई दिन दोकाल आम चूस कर ही रहते हैं। टोकरों के टोकरे आमों के एक एक गृह में लग जाते हैं। अनुपान के रूप में वह

कच्चे दूध की लस्सी पी लेते हैं। आम परम पुष्टिकारक और परम स्वादिष्ट फल है।

महाशय शाहजी पूर्व मास्टर गुरुकुल कोल्हापुरका कथन है कि वह कुछ काल बंबईमें रहे थे तो वहां जलवायु उनको अनुकूल न आया। संग्रहणी हो गई और कुछ खाया नहीं जाता था। वहां से सूरतमें आए। डाक्टरने केवल **केला** और **आम्र** पर उनको ३ मास तक रखा। चंगे हो गये। पश्चात् १ मास तक केवल **आम्रही** आम खाते रहे।

खेतों में खाद डालने के लिये अब भारतवासी खाद बनाना भूल रहे हैं। जर्मनीमें खादका डब्बा तैय्यार हुआ है। इसका एजन्ट मुझसे मिला। मैंने कहा कि यदि हम इतना महंगा यह डब्बा न खरीदें तो बताओ क्या करें? वह मित्र था, उसने कहा कि पशुओं के गोबर मल आदि के खाद सबसे सस्ते और **सबसे उत्तम हैं,** वह बोला मैं अपनी जमीन में पशुओं के मलरूपी खाद ही डालता हूं। लोग गाय भैंस बकरी आदि पशु पालना छोड रहे हैं। इस लिये जर्मनी से खाद के टीन आने लगे। मांस खानेकी प्रथाने उत्तम खाद खो दिये। पशु रक्षा के साथ साथ उत्तमसे उत्तम खाद प्रतिदिन खेतों के लिये मिल सकते हैं। युरोपके कृषिकार खाद के कारण वृद्ध पशुओं को भी अमूल्य वस्तु मानते हैं।

तक्र और दीर्घजीवनः—रावसाहेब श्रीयुत रामविलासजी शार्दा

अजमेरनिवासीने प्रयागके **विद्यार्थी** नामी उत्तम मासिक में एक लेखमालाके अन्दर यह सिद्ध किया था कि इस समय युरोप तथा अमरीका के घर घरमें छाछ पीने का रिवाज आरंभ हो गया है और तक्र (छाछ) में ऐसा गुण है कि उससे आंतों के रोग नहीं होते। तक्रपीनेवाले बडी आयू भोगते हैं। यह बात अमरीका आदि के सब डाक्टर एक मतसे कह रहे हैं। दहीकी टिकयां अब अमरीका तथा जापानसे पुष्टिकारक औषधियों के नामसे सहस्रों रुपयोंकी बाजारमें बिक रहीं हैं। पंजाबके वीर जाट तथा सिख लोग रोज ग्रामोंमें छाछका लोटा रोटीके साथ दिनके १२ बजे पीते हैं। इसी लिये डाक्टरोंका कथन है कि जाट वा सिख लोग बहुत वीर होते हैं। मराठा लोग बिलकुल पंजाबी सिखोंके समान रोज तक्र वा वा छाछ खूब पीते हैं। यह भारी रणवीर हैं यह सब कोई जानता है।

गाय वा भैंस के दूध की छाछ स्वदेशीय रीति से जो तैय्यार होती है उस में ही यह सब गुण हैं। सांचे (मशीन) से मलाई निकले हुए दूध का दही पुष्टिगुण खो देता है। इस लिये यदि ग्रामीण प्रजा उत्तम और शुद्ध छाछ नगरों में बेचे तथा स्वयं खावे तो शारीरिक बल की वृद्धि हो सकती है। अखाडों के साथ साथ यदि Dairies तक्रालय, दूधालय, घृतालय सर्वत्र खुल सकें तो सोडा, लेमोनेड, बरफ की कुलफी, बरफ के पानी की जगह शुद्ध दूध, शुद्ध मक्खन, शुद्ध छाछ मिल सके और बडे बडे ग्रेजुएट

इन धंदों को धर्म पूर्वक करें और निकट के ग्रामों में गोशालाएं तथा पशुशालाएं उनकी देख रेख में खुलें तो तक्र जैसी अमृत वस्तु प्रत्येक को मिल सके और पशुओं के मल रूपी खाद से खेतें में दुगना, तिगना अनाज पैदा हो सके।

दूध के विचित्र उत्तम गुणः—संसारभर के हस्पतालों में निर्बल रोगियों के लिये जलरूपी आहार को लेटे हुए रोगी के मुंह में औषधवत् चमचे से डाली जा सके और जिसको विना दांत हलाए रोगी अन्दर ले जा सके वह दूध है। जल वा रसरूप होने पर वह उत्तम से उत्तम फल वा अनाज के बराबर पौष्टिक गुण रखता है। इतना पौष्टिक होने पर पाचन शक्ति को बिगाडता नहीं किन्तु सहज से पच जाता है। संजीवनी शक्ति वर्द्धक होने से आयु वृद्धि का परम साधन है। जो लोग दिमागी काम लिखने पढने सोचने और भाषण करनेका करते हैं उनके लिये दूधसे बढकर कोई उत्तम भोजन नहीं, यह मत अमरीकाके उस भारी विद्वान् का है जिसने Home Encyclopaedia or The Book of Knowledge नामी अनेक ग्रन्थोंका संपादन किया है। वह यहभी लिखते हैं कि दूध पर बालबच्चे खूब पुष्ट होते हैं यह बात निर्विवाद है, और कहते हैं कि दूध बालकोंके लियेही उपयोगी नहीं किन्तु सब आयुके मनुष्योंके लिये इसकी भारी ज़रूरत है। वृद्ध मनुष्योंके दांत जब काम नहीं देते तो दूध और फलही उनके प्राण बचाते हैं।

जिस प्रकार कोई भद्र पुरुष अपने बूढे कुत्ते तथा पालतु

घोडेको उसकी वृद्धावस्थाके कारण घरसे निकाल नहीं देता, उसी प्रकार गाय, भैंस, बकरी आदि उपयोगी पालतु पशुओंको हमें उनकी वृद्धावस्था में रक्षा करनी चाहिये। वह वृद्ध होनेपर दूध भले ही न देवें किन्तु उनका मलमूत्ररूपी खाद जो अमूल्य पदार्थ खेतोंके लिये है वह तो हमें बराबर मिलता रहेगा। इस लिये मांस खाना छोडकर हमें पशुरक्षा करनी चाहिये।

अण्डा और श्रीफल (मेवे):—अण्डे में तैलतत्व रस रूप से प्रधान है जिस को खाने वाले उष्णता प्राप्ति के लिये खाते हैं। अण्डे से बढ कर नारियल, बादाम, काजु (खाजा), तिल, मोंगफली, अखरोट, आदि मेवों में उष्णता दायक तत्व हैं। जो लोग इन सस्ते, स्वादिष्ट तथा पौष्टिक श्रीफलों (मेवों) को खाते हैं, उन को कभी अण्डे खाने की लेश मात्र भी जरूरत नहीं। उक्त श्रीफल महीनों तक रह सकते हैं जब कि अण्डा दश दिन से अधिक खाने योग्य नहीं रहता। अण्डा किसी भी अनाज, फल वा श्रीफल की तुलना में स्वादिष्ट नहीं है।

अण्डा और दूध:—बकरी, गाय और भैंस के दूध अण्डे से बढकर सुलभ्य, स्वादिष्ट तथा बलकारक हैं। छाती के रोगियों के लिये ऋषि वैद्य बकरी का दूध देते थे, जो औषध के अतिरिक्त बलदायक भी है। गाय का दूध अण्डे से अधिक सस्ता, सुलभ्य, स्वादिष्ट, बलदायक, सत्वगुणी होने से मनोविकार और पागलपन तथा सब रोगों में पथ्यतम है। भारतीय आर्य-

जनता में ब्राह्मण, वैश्य, जैन तथा आर्य स्त्रियां कभी अण्डा नहीं खातीं उन को सब ही डाक्टर अण्डे के स्थान में गाय का दूध पिलाते हैं। सैनिक लोगों के लिये भी अण्डे की जरूरत नहीं। भैंस का दूध अण्डे से अधिक सस्ता, सुलभ्य, स्वादिष्ट तथा बलकारक है।

अण्डा और उर्दयूष। प्राचीनकाल में पत्थरों को जोडने के लिये जो चूना मिस्त्रीराज पंजाब में बनाते थे, उस में वह उर्द का चूर्ण (आटा) गुड तथा सन के टुकडे डालते थे। सीमैंट से भी बढकर चपकने वाली यह सामग्री बनती थी। अण्डे की लेस में इतनी उच्च ग्राह्यशक्ति नहीं जितनी उर्द के रस में है।

अण्डा और पेडे:—जब थियासोफिस्ट सभा की एक नेतृदेवी २५ वर्ष हुए अमृसतर में आई तो हमने उस को ऋषि भोजनों के स्वाद चखाए। भुने हुए पेडे शुद्ध गाय के दूध के थोडी खांड डलवाकर तैय्यार किये गये। यह पेडे उसने इंग्लैंड भेजे और दो मास तक उस के संबंधी खाते रहे। इस नेतृ का नाम मिस मूलर बी. ए. था। युरोप में आज दूध जमा कर यात्रा के लिये उस के अनेक पदार्थ बनाए जाते हैं पर **पेडों** से बढकर कोई भी जमा हुए दूध उत्तम नहीं। पेडों में, गरमी की ऋतु में आप पानी डालकर शर्बत (पेय) बनालें। यही जलमय दूध रूप हो जाता है। इसी में आप को मक्खन मिलेगा।

इस की उत्तमता के विषय में बडौदा के एक शास्त्रीजी का कथन है कि रातभर नाटकों में गानेवाले जन रोज प्रातः पेडों के

शरबत (पेय) से न रातभरकी थकान और उजागरा दूर करते हैं किन्तु दूसरे दिन काम के लिये तैय्यार हो जाते हैं। अण्डे १० दिन से अधिक ठहर नहीं सकते। पेडे महीनाभर गरम ऋतु में और ३ मास तक शीतकाल में ठहर सकते हैं। कभी कभी छ मास तक भी।

अण्डे और बादामजलः—बडोदा के नामी मल्ल शिरोमणि प्रोफेसर **माणिकरावजी** तथा सब पहलवान (बलवान) सज्जन, कठिन व्यायामके पीछे बादाम, इलायची सौंफ और काली मिरचका घुटा हुआ जल जिसको वह ठंडाई कहते हैं सदैव उपयोगमें लाते हैं। इस बादाम जलमें जो गुण है वह अण्डोंमें नहीं।

यवागु, श्रीखंड (मधुपर्क) तथा अण्डेः—जौ के आटे को गुड वा खांड डालकर पकानेसे जो रसमय भोजन तैय्यार होता है, उसको यवागु कहते हैं। वीर क्षत्रियों की यह पयस (चाय) और अण्डे दोनोंसे बढकर स्वादिष्ट तथा पौष्टिक हैं। दहीके पनीरमें इलायची केसर तथा खांड डालनेसे जो भोजन दक्षिण तथा गुजरातके आर्य्यगृहोंमें तैय्यार होता है उसको श्रीखंड कहते हैं। पुराने समयमें इसीका नाम मधुपर्क था। उस समय गुड वा खांडके स्थानमें शहद डालते थे। शुद्ध शहद आजकल दुर्लभ्य है। इस लिये अब लोग गुड तथा खांड डालते हैं।

गुड चने तथा अण्डेः—पर्वती लोग नैनीताल अलमोडा आदि में गुड चने खाने के कारण बडे बलवान् होते हैं। मुरादाबाद

में एक मुसलमान भाई रोज २० मील पैदल चला करता था। जब वह रात को घरमें जाता तो पहिले एक छटांक (पांच तोले) गुड खा लेता पीछे किसी से बात करता। वह बडा बूढा होकर मरा। वह कहता था कि गन्ने के गुड में थकान दूर करने के साथ साथ महान् बल देने की शक्ति है। छत्रपति श्री शिवाजी महाराज के वीर मरहट्टा सिपाही तथा पंजाबी वीर सिख सैनिक सदैव **गुड और चने** रणभूमि में खाकर वीरता दिखाते हैं कि जिस का वर्णन नहीं हो सकता। गत भयंकर जर्मन युद्ध में जब कि युरोप के सैनिक, घोडों तक को मारकर खा गये वहां उक्त भारतीय सैनिकों ने गुड़ और चने खाकर अपने प्राण बचाते हुए शत्रु को जीत लिया और किसी भी पशुका मांस नहीं खाया। मरहठे वीर रणभूमि में कभी अण्डे नहीं खाते, किन्तु गुड और चने। बंबई गुरुकुल में प्रातः काल सब ब्रह्मचारियों को **चने तथा मूंगफली** खाने को दी जाती है। यह ब्रह्मचारी छाती पर पत्थर उठाते और भारी वीर हैं। पुराने समय में लोग, यात्रा के समय, चने, मुरमरा, खीलें, घाट, पेडे, केले, आम, मिष्टान्न, गरीखोपा (नारियल), खाजा, बादाम, खजूर, द्राक्ष आदि पदार्थ संग रख लेते थे। लेमुं, संतरा, नारंगी, अनार भी रखते थे ताकि यह औषध का काम दे सकें। आज वह कटोरदान तथा टोकारेयों की प्रथा नष्ट हो जाने से होटलों में रोगकारक पदार्थ विवश खाने पडते हैं।

उपरोक्त लेखसे एक जिज्ञासु जान सकता है कि अण्डेसे

बीसियों अधिक सस्ते, स्वादिष्ट तथा पौष्टिक पदार्थ हैं जो विना किसी प्राणी की जान लिये मिल सकते हैं।

(१) अण्डा प्राणीका आदि स्वरूप है और अन्तिम स्वरूप वह चेतन पक्षी होगा जो सुख दुःख भोगनेके लिये योनिमें आया उसको आदि अवस्थामें नष्ट करनेसे मनुष्य हिंसा पापके भागी हो सकते हैं।

(२) ईश्वरके नियमसे मानवी गर्भ ९ मास पेटमें वास करता है, उसको यदि कोई तीसरे मास बाहिर निकाल ले तो वह गर्भहत्या हुई। इसी प्रकार पक्षी बननेसे पूर्व उसको नष्ट करना मानो ईश्वरीय नियमकी मनसा के विरुद्ध चलना अर्थात् पाप करना है।

(३) मुरगी जिसके अण्डे बहुत खाए जाते हैं, सब पक्षियों में मोरसे उतरकर दूसरे नंबरका उपयोगी पक्षी है। मोर तो सांप को जो विषमय भयंकर प्राणी है खा जाता है। मुरगी, सांपसे उतरकर जो बिच्छु तथा कनखजूरा विषवाले भयंकर प्राणी हैं उनको खा जाती है। ईश्वरने मनुष्योंको बिच्छु तथा कनखजुरेसे रक्षण करने के लिये ऐसा पक्षी बनाया जिस (कुकडी) के अण्डे खाते हैं यह बिच्छु, आदि विष भरे प्राणियोंकी अति वृद्धि-द्वारा मनुष्य मात्रका अहित करते हैं।

(४) अण्डों का उष्णतत्व मनुष्य के रक्त को दूषित करता वा बिगाडता है। इस लिये यदि कोई पुरुष हमें मुफ्त

अण्डे खाने को दे तो हमें अपने शरीर के लहु को आरोग्य रखने के लिये उन्हें कभी खाना नहीं चाहिये। इंगलैंड के नामी डाक्टर हेग ने सिद्ध किया है कि अण्डे रक्त--विकारक हैं। अण्डे खानेवालों में रक्त विकार पैदा हो जाता है। इसी लिये वह इन को मांस समान अभक्ष्य पदार्थ दर्शाते हैं। उनके वचन अण्डों को अभक्ष्य सिद्ध करने वाले हम नीचे उद्धृत करते हैं।

(५) विचित्र घंटाघर। आजकल Clock Towers वा घंटाघरों की महिमा तथा उपयोग जनता समझती है और इस के लिये हज़ारों रुपये खर्च किये जाते हैं। जहां कुक्कट (मुर्गा) सुरक्षित रह सके उस कूचे वा गली में घंटाघर की जरूरत नहीं। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में सब को जगाने वाला कुक्कट ही है। ऐसे उपयोगी घंटाघर की संतान को नष्ट करना ठीक नहीं।

(६) कई सज्जन कहा करते हैं कि यदि हम अण्डे न खावें तो मुरगिया इतनी बढजावें कि किसी को रहनेका स्थान न मिले। ऐसे प्रश्न करने वाले ईश्वर को पूर्ण ज्ञानी नहीं मानते ईश्वर ने जिस पशु प्राणी को पैदा किया है वही उस को मर्यादा में रखने के सब उपाय जानता तथा करता रहता है जिसको जानकर विद्वान् चकित होजाते हैं। तुम अण्डों के लिये घर में कुक्कट आदि रखना छोड दो, फिर तुह्मारी यह चिन्ता भी स्वयं ही दूर हो जाएगी कि तुम्हारे बंगले में किसी को रहने का स्थान न मिले। जिन अन्य पक्षियों के अण्डे तुम नहीं खाते उनकी

आतिवृद्धि की चिन्ता तुम्हें कभी नहीं लगी। इस लिये चिन्ता से मुक्त होना चाहते हो तो इन को जंगल में रहने दो बंगले में कैद मत करो और बंगले को अण्डागार मव बनाओ।

रोग और अंडाः–अंडेका छिलका छिद्रमय होता है और इसी लिये रोग अणु तथा रोग जन्तु इसमें शीघ्रही प्रवेश कर जाते हैं! यह भय सायंसदानोंके ही वचनों में हम दर्शाते हैं:–

" The shell of the egg is porous and consequently will permit the entrance of disease and other putrefactive germs. And thus this food may be made unfit for human consumption in a comparatively short time. "*

(अर्थ) " अण्डे का छिलका छिद्रमय होता है और इस लिये रोग तथा अन्य दूषित रोगजन्तु इसमें से इस के अन्दर प्रवेश कर सकते हैं। इस लिये यह भोजन बहुत थोडे काल में ही मनुष्यके आहार के लिये योग्य नहीं रह सकता। "

इंगलैंड के सुप्रसिद्ध **डाक्टर हेग** सर्व प्रकार के मांस तथा अण्डे का भोजन के लिये भारी निषेध करते हैं, उन के वचन पहिले हम अंगरेजी भाषा में दे कर फिर उनका अनुवाद देंगे।

" Haig rejects all meat diet and advocates a modified form of vegetarianism, which admits of milk and cheese. "

*Lessons on Food By D. R. Joglekar B. A. Baroda.

" Haig deprecates eggs "—This is, indeed, what he says.—

" In eggs for instance I have been unable to find any uricacid or other members of the xanthine group such as I have found in meat & yet their steady & graduated administration, invariably brings about a large rise in the excretion of uric acid and all the evil effects of its passage through the blood so that I have had to exclude them entirely from my diet."

[Alexander Haig's Theory and Dietary]

अर्थ " डाक्टर हेग सर्व प्रकार के मांस को अभक्ष्य बतलाते और फल अनाज के बदले हुए प्रकार को जिस में दूध और पनीर शामल हैं भक्ष्य बतलाते हैं। "

" डाक्टर हेग अण्डों का भोजन के लिये निषेध करते हैं। " सचमुच उनके अपने वचन निम्न लिखित हैं:—

" दृष्टान्त की रीति से अण्डों के स्वरूप में युरिकएसिड वा जेन्थैन गण के अन्य अंश मैं नहीं पासका जैसे कि मुझे मांस के अन्दर मिले तथापि उन का लगातार सेवन युरिक एसिड की भारी उत्पत्ति और अन्तर्गत सर्व रक्त विकारों का कारण है इस लिये मुझे अण्डों को भक्ष्य पदार्थों के गण से सर्वथा छोड़ना पड़ा "

भारतीय आर्य्य भोजन एक आदर्श भोजन है। बडे बडे सायंस दान और भोजनशास्त्री ' दाल रोटी और घी को आदर्श

भोजन दर्शा रहे हैं—उनका निम्न वाक्य इस तत्व को सिद्ध कर रहा है:—" This we have learned to do and accordingly we take our rice or rotali with ghee and dal." ×

अर्थ " इस कर्त्तव्य का हमें शिक्षण मिलता है अतः हम अपने चावल वा रोटी सहित घी और दाल को खाते हैं। "

फिर यही प्रोफैसर जोगलेकर अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि

" By the Western method of milling the grain for human food, the outer layers and the germs are removed to a large extent."

(अर्थ) " पश्चिमी रीतसे मनुष्य आहारके लिये आटा पीसनेपर बाहिरके छिलके और बीजका अंश बहुत कुछ दूर हो जाता है।

इससे सिद्ध हुआकि हाथ चक्की वा बैलचक्की (खरास) की भारतीय रीति आटा पीसनेकी सर्वोत्तम है। गर्भवती स्त्रियां राजस्थानमें सेठानियां होनेपरभी हाथसे चक्की पीसती हैं। इससे गर्भ प्रसवमें अधिक कष्ट उनको नहीं होता।

" The protein content of the pulses being high, they go well with Starchy foods such as rice, rotali, bajri or jawar bread."

(अर्थ) " दालों में पुष्टिदायक तत्व (प्रोटीन) बहुत होता है। इस लिये वह सत्तु (नशासता) प्रधान भोजनों यथा चावल, रोटी, बाजरी वा ज्वारकी रोटीके उत्तम संगी हैं "

× Lessons on Food. By D. R. Joglekar, B. A.

जो लोग कहा करते हैं कि, 'द्विदलधान्य' वा दालोंकी अपेक्षा मांसमें पौष्टिकतत्व अधिक है वह सायंस तथा अनुभव शून्य हैं। उनको उक्त वचन जो पश्चिम भोजन विज्ञानके ताजा सिद्धान्तोंपर लिखा गया हैं जरूर मनन करने चाहिये जो बतला रहा है कि " दालों में प्रोटीन (पौष्टिक तत्व) बहुत होता है । "

वेद में भी मांसभक्षण तथा अन्डे खाने का निषेध निम्न लिखित मंत्र से सिद्ध हो रहा है ।

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥

(अथर्व वेद का० ८, अनु० २, सू० ६ मं० २३)

अर्थः-जो कच्चे मांस को खाता है अथवा किसी से पकवा (बनवा) कर खाता है और जो अण्डों को खाता है राजा उन को यहां से दूर हटाने का दंड दे ।

मानवी भोजन पिछले बीस वर्षोंमें मानवी भोजन के प्रश्न पर यूरप अमरीका में विद्वानों ने बहुत मनन किया है । उनके मनन का सार इस प्रकार है:—

(१) भोजन के उद्देश और प्रकार पर उनका दृढ मत है कि मनुष्य को सबसे प्रथम ऐसे भोज्य पदार्थों की आवश्यकता है जो शारीरिक क्षति की पूर्ति कर सकें । वह प्रथम प्रकार के पदार्थों को Protein (तनरक्षक) नाम देते हैं और इस श्रेणी में वह

दूध, द्विदल धान्य (दालें), अंडे, मांस और मत्स रखते हैं। जिनको दालें वा दूध मिल सकें उनको अंडे, मांस और मत्सकी जरूरत नहीं। (२) दूसरे वर्गमें वह उष्णता तथा बलवर्धक पदार्थ लेते हैं जैसे नारियल, तिल, तिलका तेल, बादाम, सरसोंका तेल, नारियेल का तेल, बिनौले का तेल, घृत, मलाई, मक्खन, पनीर, अण्डे और चरबी। जिनको अंडे, और चरबी नहीं खाना उनको स्नेह वर्धक पदार्थ घृत, नारियेल, तिल बादामादि, बहुत हैं। (३) तीसरे वर्गमें वह बल तथा उष्णता देनेवाले पदार्थों को लेते जिनको वह Carbohydrates कहते हैं। इनमें निशास्ता, अथवा सत्तु, तत्त्व जिसको अंग्रेजीमें Starch कहते हैं पाया जाता है। चावल, गेहूं, बाजरा, जवार, सागुदाना, आलु, मीठे फल, ऐरोरुट अनाज और खांड, इस वर्गके पदार्थ हैं। (४) चौथे वर्गमें वह Mineral matter अर्थात् क्षार युक्त पदार्थों को लेते हैं। यह क्षार पदार्थ पाचनशक्तिके दाता हैं। इस वर्गमें नमक, हरे शाकभाजी, दूध, साबत गेहूं (Whole-wheat) और दलिया Whole grain Products.) तथा अंडेके रस का समावेश होता है जो लोक नमक और शाकभाजी खाते हैं उनको अंडेकी कुछभी जरूरत नहीं। (५) वें वर्गमें वह प्राणशक्तिदायक पदार्थोंका समावेश करते हैं। जिनको वह Vitamines कहते हैं। इस वर्गमें ताजे फल, हरे शाक और अनाजोंका छिलका दूध मलाई मक्खन, अण्डा, और मछली के तेल का समावेश होता है। मानचेस्टर की वेजि-

टेरियन सोसायटी के सभासद जो मछली के तेल को नहीं खाते वह " दूध की मलाई का उपयोग करते हैं । " Lessons on Food के कर्त्ता—whole milk (ताजा दूध) को प्राणशक्ति का दाता लिखते हैं । इसलिये जो लोग हाथ की चक्की का आटा और छिलके सहित दालें खाते, ताजे फल और हरे शाक का सेवन करते वा ताजे दूध मलाई मक्खन, में से किसी वस्तु को खा सकते हैं उनको मछली के तेल वा अण्डे की जरूरत नहीं। भारतीय वैद्य लोग आंवले का मुरब्बा दूध के साथ खाने को बताते हैं यह आंवले का मुरब्बा उक्त प्रकार से खाया हुआ मछली के तेल से बढ कर बल देता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वैद्य **च्यवनप्राश** नामी मुरब्बा अपने औषधालयों में बेचते हैं। यह बडी भारी पौष्टिक, मीठी, और सस्ती दवाई है जो Cod-liver oil आदि सर्व प्रकार के मछली के तेलों से बहुत बढ कर बलकारक है।

साधारण लोग दूध में बहुत शक्कर वा खांड डाल कर उपयोग में लाते हैं । नाम मात्र खांड वा शक्कर डालनी हितकर है । बहुत खांड, बहुत मिठाई तथा मांस खानेवालों के दांत निर्बल हो जाते हैं । ताजे फल और हरे शाक खानेवाले, दांतों के अनेक रोगों से मुक्त रहते हैं ।

दूध पीने पर जो लोग कुल्ले नहीं करते उनके भी दांत रोग युक्त हो जाते हैं । इस समय युरोप तथा अमेरिका के सर्व उच्च डाक्टर एक मत से लिख रहे हैं कि मनुष्य के **दांतों** की

आकृति बन्दर, लंगूर आदि के दांतों से मिलती है और चूंकि कोई बन्दर मांस नहीं खाता इस लिये मनुष्य को भी मांस नहीं खाना चाहिये यह उनका कथन है। यह बात तथा उन के मानवी भोजन संबंधी अनुसंधान सब ही मिल कर वेद के इस वाक्य की जय करा रहे हैं जो कि "**अन्नम इषवः**" इस मंत्र में अन्न को मानवी भोजन दर्शा रहा है।

यजुर्वेद अ. १७ मंत्र (६०) में **उक्षा** शब्द के धात्विक अर्थ सींचनेवाला करते हुए मंत्र कि उत्तम संगति ऋषि दयानन्दने लगाई है और जो युरप के विद्वान् उक्षा का अर्थ बैल के सिवाय हठ से दूसरा नहीं मानते वह इस मंत्र की संगति कभी लगा नहीं सकते मंत्र तथा भाष्य नीचे दिया जाता है।

उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ॥

(यजु० अ० १७ मं० ६०)

(अर्थ) "(दिवः) प्रकाश के (मध्ये) बीचमें (निहित) स्थापित किया हुआ (उक्षा) वृष्टि जलसे सींचने वाला (समुद्र) जिससे कि अच्छे प्रकार जल गिरते हैं (अरुणः) जो लाल रंग वाला (सुपर्णः) तथा जिससे कि अच्छी पालना होती है (पृश्नि) वह विचित्र रंग वाला सूर्य्य रूप तेज और (अश्मा) मेघ (रजसः) लोगों को (अन्तो) बन्धन के निमित्त (विचक्रमे)

अनेक प्रकार घूमता तथा (पाति) रक्षा करता है (पूर्वस्य) तथा जो पूर्ण (पितुः) इस सूर्य्य मण्डल के तेज उत्पन्न करने-वाला बिजली रूप अग्नि है उसके (योनिम्) कारण में (आ, विवेश) प्रवेश करता है वह सूर्य्य और मेघ अच्छे प्रकार उपयोग करने योग्य है।

आप्टेकृत संस्कृत अंगरेजी कोष के पृ. २५४ पर ' उक्षा " शब्द के अर्थ इस प्रकार मिलते हैं:—

(१) " An ox or bull, changed to उक्ष in some comp. महोक्षः, वृद्धोक्षः"

(२) " An epithet of Soma, "

(३) " One of the eight chief mendicants (ऋषभौषधि). "

अर्थात् उक्षा=(१) " बैल वा सांड कहीं कहीं उक्ष पाठ मिलता है जैसे महोक्षः वृद्धोक्षः "

(२) " सोम की एक पदवी है "

(३) " आठ मुख्य औषधियों में से एक औषधि (ऋषभ औषधि वर्ग की)."

अतः इस कोषकार ने भी केवल बैल वा सांड अर्थ ही नहीं किये किन्तु ऋषभ वर्ग की आठ औषधियों में से एक औषधि का नाम दिया है स्व. पं. सीताराम शास्त्री वैद्य रावलपिंडी

ऋषभ के अर्थ सालममिश्री जडी और उक्षा के अर्थ मूसली औषधि के करते थे। वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रसंगवशात् उक्षा के अर्थ वीर्य्यसींचने में सामर्थ्य मूसली आदि के हो सकते हैं। अतः बैल वा गाय आदि किसीभी पशुकी हत्या की गंध तक नहीं।

यजुर्वेद अ. २० मं ७८ में 'आहुताः' शब्द आया है उस के अर्थ वेदभाष्य में ऋषि दयानन्दने "सब ओर से ग्रहण किये हुए' जो किये हैं वह सुसंगत तथा युक्त हैं। हु धातु दानादान अर्थ में आता है, इसलिये आहुता के अर्थ उस के धातु अनुसार हैं। विद्वद्वर्य्य पण्डित श्री गंगाप्रसादजी एम. ए. (जज टीहरी राज्य) ने एक लेख में इस प्रकार के शब्द के ऐसे ही उत्तम अर्थ उस के धातु पर से किये थे।

युरोप के दुराग्रही विद्वान् प्रत्यय और धातु छोड के आहत के अर्थ मारकर यज्ञ में डालने के करके भारी अनर्थ किया करते हैं।

अथर्ववेद के अनेक मंत्रमें **मांस-ओदन** बनाकर अतिथिको खिलाने का वर्णन है। इसके सच्चे अर्थ रोचक भात के हैं। अबभी भारतीय आर्य्य गृहोंमें मान्य अतिथि के आने पर दूध चावल जिसको उत्तर हिंदमें खीर और गुजरात में दूधपाक कहते हैं बनाया जाता है।

ओ३म् उदीचीदिक् सोमोधिपतिः स्वजोरक्षिता शनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ४ ॥

भूलोक के दोनों ध्रुवीय प्रदेशोंमें सोम अर्थात् शीतका जोर है, पर उत्तरीय ध्रुव खंड में दक्षिणीय ध्रुव प्रदेशकी अपेक्षा अधिक शीत है। इस लिये यदि कोई प्रश्न करे कि पृथिवीके किस भाग में **परमशीत** है तो उत्तर होगा कि उत्तरीयध्रुव प्रदेशमें। "एनसाईक्लोपीडिया बृटेनिका' नामी प्रसिद्ध आंग्लविश्वविद्याकोष के निम्न वचन इसी तत्वको पुष्टकर रहे हैं:—

"The result is to show that while the winter is on the whole less severe at high latitudes than at equal latitudes in the North."

(अर्थः) "परिणाममें यह दिखाना है कि एक मात्र शीत ऋतु उत्तरीय ध्रुव निकट वर्ती समानान्तर स्थलोंकी अपेक्षा यहां (दक्षिणी ध्रुव) पर न्यून प्रचंड होती है।"

इसका भावार्थ यह है कि उत्तरीय ध्रुव प्रदेशमें दक्षिणी ध्रुवकी अपेक्षा शीत अधिकतम होता है।

वेदोंके अनेक मंत्रों में सोम शब्द अग्नि के विरोधी शीत जल वा रसका वाची आया है। आयुर्वेदमें अग्नि और सोमसे गरम और शीत वा रस गुण प्रधान पदार्थ लिये जाते हैं। आप्टेकृत

अंगरेजी कोषमें **सोम**का अर्थ Water अर्थात् जल दिया हुआ है। वैशेषिकदर्शनमें **शीतपन,** जलका स्वाभाविक गुण दर्शाया गया है। प्रत्येक मनुष्य आजकल उत्तरीय ध्रुव प्रदेशों की कथाएं भूगोल संबंधी पुस्तकों द्वारा जान सकता है। जिन में ध्रुवीय प्रदेश का नाम हिम आच्छादित प्रदेश वा परम शीत प्रधान भूमि लिखा हुआ है। इसी तत्त्व को वेद मंत्रने यह कह कर दर्शा दिया कि **उदीचदिक् में सोम** अर्थात् **शीत का राज्य है**। भूलोक के सब देशों में जब कभी उत्तरीय ध्रुव की तरफ से चली हुई वायु आती है तो सब देशों की प्रजा परम शीत की पुकार मचाती है। उस समय विद्यार्थी अपने अनुभव से समझ लेते हैं कि उत्तरीय ध्रुव में कितना प्रबल शीत होगा जिस के लिये वहां का सागर प्रायः जम कर हिमसागर का रूप धारण कर लेता है। पुराने संस्कृतज्ञ भारतीय ब्राह्मण उक्त प्रदेशों में वैदिक धर्म तथा वैदिक विद्या प्रचार के लिये जाते थे और जो नाम उन प्रदेशों तथा वहां के आदि निवासियों के आज तक विद्यमान् हैं उन में अमर कीर्त्ति रूपी स्तूप संस्कृत शब्द विद्यमान् हैं।

इंग्लैंड के पंडित मैक्समूलरने लिखा है कि संस्कृत के खंड का अपभ्रंश लैंड शब्द है और वह स्वयं दर्शाता है कि आयरलैंड का शुद्ध नाम आर्य्यखंड था।

शकत खंड (स्काटलैंड) से ऊपर उत्तर को जाते हुये जो द्वीप हैं उन को आजकल भूगोल पुस्तकों में शैटलैंड लिखते हैं। पर शीत

खंड इनका शुद्ध आदि संस्कृत नाम था। यहां से भारी शीत आरंभ हो जाता है। आंग्ल विश्वविद्या कोष के पाठ से यह बात मिलती है कि एशयाईरूस के उत्तर को ध्रुव प्रदेश के निकट एक द्वीप है जिस का नाम भूगोल की सब अंगरेज़ी पुस्तकों तथा उक्त विश्वकोष में " Novya Zemlya " **नव-झम-आलय** ऐसा लिखा हुआ है। इस को उर्दु के जुगराफियों में नव्रजुमला लिखते हैं पर संस्कृत के **नवयम-आलय** का अपभ्रंश है। ध्रुव के निकट परम शीतप्रधान हिममय प्रदेश में है जिसको अलंकार रूप से नवीन मृत्यु गृह कहना चाहिये। इसी लिये इसका संस्कृत नाम नवयम आलय, हमारे संस्कृतज्ञ ब्राह्मणोंने रखा। उस समय भूलोककी परिक्रमा व्यवहार रूप से हमारे संस्कृतज्ञ आर्य्य करते थे। आज संध्या के पीछे इन मंत्रों के पाठ मात्र से ही भारतीय आर्य्य भारी कल्याण माने हुए हैं। जब तक पुराने ऋषि वा ब्राह्मण आदि द्विजों समान भूलोक की व्यावहारिक परिक्रमा हमारे भारतीय आर्य नहीं करेंगें तब तक इन परिक्रमा मंत्रों से हम पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते।

रूस देश की आदि प्रजा का नाम जो ध्रुवीय प्रदेशों के निकट प्राचीनकाल में बसती थी " Samwadeyan " था। यह शब्द " सामवेदियन " है जो कि निःसंदेह सामवेदीका अपभ्रंश हुआ। धन्यथे वह सामवेदी ब्राह्मण जो उत्तरीय ध्रुव तक पहुंचे। उनके पुरुषार्थ की जितनी स्तुति करें थोडी है।

"......who about 870 rounded the North-Cape, sailed eastwards along the Murman coast and discovererd the White Sea, where he reached the South of the Kola Peninsula and the boundary of the land of the Biarmians and fought with the Biarmians about 920."

"......The original people of the farthest North of Europe are now represented by the Lapps, who lead a migratory life......Farther east their place is taken by the Samoyedes, who live along the coast of the Kara Sea & the Yalmal Peninsula; they have also a small settlement in Novya Zemlya. [Ency. Br.]

(अर्थ)....जिसने ८७० सन् के लगभग, उत्तरीय भूशिर की जलयात्राकी और मरमान तटपर से पूर्व दिशाको जलपोत ले गया और श्वेत समुद्रको खोज निकाला जहां कि वह कोला प्राय-द्वीप के दक्षिण में जा पहुंचा और **बाइअरमियन्स** के देशकी सीमापर, और ९२० सन् के लगभग **बाइअरमियन्स** लोगों से युद्ध किया।"

"..........युरोपके अत्यंत उत्तरीय देशके मूलनिवासियों को अब लैप प्रगट किया जाता है जो ग्रामोंमें स्थिररूपसे नहीं रहते।.........अत्यंत पूर्वकी दिशामें उनका स्थान **सामोयेडीस** ने ले लिया, जो कारा समुद्र के तटपर वसते थे तथा **यालमल**

प्रायद्वीप में, उनकी **एक** छोटीसी बस्ती **नवाझोमालयामें** भी थी। (देखो आंग्ल विश्वविद्याकोष)। उक्त लेखमें जो **बाइअरमियन्स शब्द** आया है वह निःसंदेह **ब्राह्मणका, सामोयेडीस** शब्द सचमुच **सामवेदी**का, **यालमल** शब्द **जलमल**का और **नवाझेमालया** नवयमआलयका अपभ्रंश है। नवयमआलय शब्द के अर्थ नया शासनालय हैं। कारण वैदिक संस्कृत में यम शब्द शासकके अर्थों में बहुत आता है। उक्त लेखसे निम्नलिखित बातें सिद्ध होती हैं। (१) यह कि युरोप, तथा एशियाखंड के उत्तरीयतम प्रदेशों में 'ब्राह्मण,' 'सामवेदी," और वीरक्षत्री शासक अर्थात् यमभी पहुंचे थे। (२) श्वेतसमुद्र, काला प्रायद्वीप, काला समुद्र, तथा जलमल आदि सब संस्कृत नाम हैं। जिनसे पता लगता है कि उस समय आर्य्यप्रजा जो वहां पहुंची थी वह संस्कृत भाषा भाषीथी।

ऋषि दयानन्दने अपने वेदभाष्यमें **सोम** शब्दके अर्थ रस संबंधी किये हैं यह बात निम्न मंत्रों के अर्थोंसे पुष्ट हो रही है

यजुर्वेद अ० ९ मंत्र २४ में जो **सोम शब्द** आया है उसका अर्थ रस किया है। फिर यजुर्वेद अ० ७ मंत्र ३७ में **सोम** शब्दके अर्थ रस किये गये हैं (देखो वेद भाष्य)

मंत्र के 'स्वज' शब्द पर विचारः—अज् शब्द के अर्थ आप्टेकृत कोष में इस प्रकार हैं। जाना, हांकना, अपनी

तरफ लाना, फैंकना गतिदाता Leader नायक। यहां पर हम Leader (नायक) अर्थ लेंगें। इसके अतिरिक्त सु उपसर्ग के अर्थ सम्यक् के हैं। सम्यक् क्या भाव प्रगट करता है कि वह व्यक्ति वा पदार्थ जो नायक है वह शक्तिशाली है अर्थात् विशेष शक्ति संपन्न है जिस से वह पराधीन नहीं अतः 'स्वज्' शब्द के अर्थ **सम्यक् नायक शक्ति** के हुए। *

जिस को कई लेखक Positive attraction (प्रबल आकर्षण) अथवा Magnetic Force वा चुंबक शक्ति कहते हैं उस को संस्कृत का उक्त शब्द स्वज् किस उत्तमता से वर्णन कर रहा है इस को जिज्ञासु जन ही जान सकते हैं। जो भाव Positive (पौजिटिव) शक्ति का है वही सु उपसर्ग का है। शक्ति की विशेषता दर्शाने के लिये ही पौजिटिव शब्द पश्चिमी पदार्थ विज्ञानी उपयोग में लाते हैं और सु उपसर्ग भी शक्ति विशेष को बोधन करा रहा है यह निर्विवाद है, अतः सु अज् के अर्थ **सम्यक् नायक शक्ति** के हमने समझ लिये।

योगी एन्ड्रोजैक्सन डेविस एक स्थल पर अपने ग्रन्थ में लिखते हैं कि जब सांप वृक्ष के मूल में कुंडली लगा शाखा पर बैठे हुए पक्षी से अपनी आंखें मिला लेता है तो वह उस को योग मूर्छा में डाल देता है उन के शब्दों में वह उसको Magnetise कर

---

* 'स्वज्' के इन अर्थों से कविवर श्रीमान् पण्डित महाराणीशंकरजी शर्म्मा आचार्य्य कन्या गुरुकुल भी सहमत हैं।

देता है। सांप की यह मिकनातीसी शक्ति सचमुच नायक शक्ति है; जिसके द्वारा वह अपने शिकार को मूर्छित कर देता है। इस से ईश्वर की करुणा सिद्ध है। लोहे पर जब चुंबक शक्ति वा आकर्षण का प्रभाव पहुंचता है तो लोहा गतिवान् हो कर उस शक्ति की तरफ खिंचने लगता है। चुंबक पत्थर का अंग्रेजी नाम Lodestone लोड स्टोन है पर पहिले इसका नाम Leading stone लीडिंग स्टोन पदार्थ विज्ञानियोंने रखाथा। Leading stone लीडिंग स्टोन के अर्थ **नायक पत्थर** के हैं इसका पहला अपभ्रंश लीडस्टोन हुआ और अब दूसरा लोडस्टोन है। युरोप के पदार्थ विज्ञानी 'लोडस्टोन' कहते ही उस के मूल अर्थ नायक वा चुंबक पत्थर के समझ जाते हैं। चुंबक आकर्षण का स्वरूप **नायक शक्तिका** होना सब कोई जानता है। लोहा इस शक्ति के आधीन होकर उसकी तरफ खिंचा हुआ चला जाता है। लोहेके साथ इसकी तुलना करें तो इसको आधीन नहीं किन्तु **सम्यक् शक्ति** नाम देना होगा। लोहे का यह **नायक** अथवा आकर्षक है। अब हम कहेंगे कि 'स्वज्' का जो सम्यक् **नायक शक्ति** अर्थ है वह कैसा विज्ञान पूर्ण है इस में कुछ भी संदेह नहीं।

इसी नायक शक्ति को अंग्रेजी में Magnetic Force (मैगनेटिक फोर्स) कहते हैं। उत्तरीय ध्रुव में इस नायक शक्तिका कितना जोर है, यह बात ध्रुव सूचक यंत्रस्थ लोहे की सुई दर्शा रही है। भारतीय आर्य्य और जापानी आर्य आज तक

सोते समय अपने शिर उत्तर दिशा में कभी नहीं करते, कारण कि प्रधान चुंबक आकर्षण कपाल की अल्प चुंबक शक्ति को अपनी तरफ विशेष न खैंच सके। भारतीय ऋषि किस उत्तमता से उत्तरीय ध्रुव की इन शक्तियों के प्रभाव को जानतेथे इनके अधिक वर्णन की जरूरत नहीं।

अब हमें मन्त्र के 'अशनि' शब्द पर विचार करना होगा। आप्टे कृत कोष में इस के अर्थ flash of lightening फ्लैश औफ लाइटानिंग अर्थात् विद्युत चमक के हैं। ऐसे ही अर्थ आर्ष वेद भाष्य में मिलते हैं यथा:—

यजुर्वेद अ० ३९ मं० ८ में जो **अशनि** शब्द आया हैं उसके अर्थ ऋषि दयानन्दने विद्युत वा बिजली के किये हैं। यथा "**अशनिम्**" **विद्युतम्** (देखो वेद भाष्य)

अतः कोष और आर्ष वेदभाष्यसे **अशनि** शब्द के अर्थ **विद्युत** के हैं, यह हम देख चुके। इस स्थलपर हमें **अशनि** शब्दके मूल अर्थ की तरफभी दृष्टि देनी होगी। विदित हो कि 'अशनि' शब्द अश् धातुसे जिसके अर्थ व्यापक होने के हैं बना हुआ है। इस लिये अशनिविद्युतका मुख्य लक्षण **व्यापक होना,** हमें याद रखना चाहिये। इसी मूल अर्थ की महिमा भारत भूषण पण्डित **श्री जगदीशचन्द्र बोस**ने संसारको दिखा दी और सिद्ध कर दिया कि विद्युत व्यापनशील होनेसे विना तार के भी संदेश वाहक है।

उक्त आर्य्यवरने दर्शा दिया कि विद्युत जहां धातुकी तारमें दौड सकती है, वहां विना धातु तारभी यह वायुमार्गसे एक स्थानसे दूसरे स्थानतक अपनी व्यापनशीलता के कारण जा सकती है और इसी लिये बेतारकी तार चलाने का भारी श्रेय आर्य्य-जगमान्य पं० बोसको है। भारतके पुराने आर्य्य ऋषि अशनि के इस स्वरूप ज्ञानको इस उत्तमता से जाने हुए थे कि उन्होंने जिस धातुसे इस का नामकरण किया उसके अर्थही व्यापक होनेके हैं। अहो, धन्य थे वह भारतीय आर्य्य ब्राह्मण जिन्होंने विद्यारूपी सागरको धातुरूपी गागरमें भर दिया।

युरोपके विद्वान् श्रुति आधारसे रहित होनेके कारण स्थूलसे सूक्ष्म प्रयोगोंकी तरफ जा रहे हैं। धातु, कांच, लाख, रेशम, ऊन आदि स्थूल पदार्थोंमें विद्युत व्यापक है यह तत्त्व इस शताब्दीके आरंभमें उन्होंने प्रयोगद्वारा अनुभव किया। फिर जल वा नदी वा झरने आदिके जलोंमें व्यापक है यह बात वह जाने। स्थूल धातों तथा सूक्ष्मधात अर्थात् धातु तार आदिमें वह व्यापक हो सकती है इस तत्वके समझ लेनेपर तारद्वारा दूत का काम लिया अब श्री बोसने सिद्ध कर दिया कि तार से भी सूक्ष्मवायु में यह व्यापक होकर बेतार का दूत बन सकती है। X–Ray (अक्ष–रश्मि) के आविष्कारने विद्युत के इस महान् गुणको सिद्ध कर दिखाया कि यह अस्थिसमान कठिन पार्थव पदार्थमें

प्रवेशकर अपनी व्यापन शीलता का पूर्ण परिचय दे सकती है।

अतः हम अग्निगण का व्योरा निम्न प्रकार संक्षेप से लिखते हैं।

(१) आकाशगामी विद्युत। यह अविष्कार अभी तक पूर्ण रूप से युरोप में नहीं हुआ। यजुर्वेद अ. ३९ में सूर्य्य तथा विद्युत रश्मियों को पृथिवी से बाहिर जहां वायु नहीं उस आकाश मार्गद्वारा अन्य लोकलोकान्तरों तक जानेवाली वर्णन किया है। यही नहीं परंच जीवात्मा लिंग शरीर सहित इस के आश्रय से मृत्यु के पीछे अन्य लोकलोकान्तरों में जाता है यह दूसरी बात भी अभी युरोप के किसी पंडितने पूर्ण रूप से मालूम नहीं की। उक्त यजुर्वेद के उसी अध्याय में इस का भी वर्णन है।

(२) वायुगामी विद्युत। पं. श्री बोसजी का इस युग में दोबारा आविष्कार और बेतार की तार के युग का आरंभ।

(३) जलगामी विद्युत। झरनों के पानी के पहाडों के संग टकराने से विद्युत उपलब्ध कर नगरों में दीपक का काम लिया गया।

(४) पाषाणगामी विद्युत। सात पाषाण जन्य हीरा आदि रत्नों में इस की प्रभा।

(५) मेघगामी विद्युत। जो वायु कडक के साथ चमकारा करती है। मैक्समूलरने इस की पुष्टि में वेदवचन दिया है।

(६) कीटगामी विद्युत। बरसाती कीटको 'जगन-जोत' और भाषामें केवल जुगनू ही कहते हैं। इंगलिशमें Glow worm इसका नाम है। "दीबुकओफनालेज" के संपादकके वचनोंसे यह बात सिद्ध होती है कि इस कीट ज्योतिका स्वरूपही तो X-Rays (अक्ष-रश्मि) वा 'एक्सरेज' में विद्यमान् है। अस्थि गामी विद्युत इस कीटसे सिद्ध होता है।

(७) औषधगामी विद्युत। काश्मीर के पर्वतों में अनेक जडी बूटियां (औषधियां) रातको विद्युत रूप हो जाती हैं। इनमें भी विद्युत ही व्यापक है।

(८) मत्सगामी विद्युत। युरोपके विद्वानोंने रातको अनेक चमकनेवाली मछलियोंका नाम Electric Fishes (विद्युतमय मत्स) दिया है।

(९) प्रबलविद्युत or Positive Electricity जिसको उपनिषद् परिभाषामें "प्राण" विद्युत कह सकते हैं। यह दाक्षिणीय ध्रुवकी विद्युतको आकर्षण करती है। दक्षिण ध्रुवीय विद्युतका नाम 'रयि' विद्युत or Negative Electricity अथवा अबला--विद्युत है। Positive अथवा प्रबल (प्राण) विद्युतका मुख्य सदन उत्तरीय ध्रुव प्रदेश है।

(१०) **ध्रुवीय रश्मिमंडल** जिसको अंग्रेजी में 'आरोरा' कहते हैं। ग्रीसदेश के पुराने आर्य्यमुनि अरस्तु को

इस का विज्ञान था। रोम अर्थात् इटली के भूगोलशास्त्री भी इस दृश्य का विज्ञान रखते थे।

वृहत्संहिता में इस की परिभाषा अनुसार 'परिवेष' कहा गया है। इस विचित्र रश्मिमंडल के पूर्ण कारण अभी तक निश्चित रूप से युरोप वा अमरीका के विद्वान् नहीं कह सकते। इस का वर्णन **वृहत्संहिता** में बहुत ही युक्त मिलता है। उक्त संहिता से इस के बोधक श्लोक हम अन्यत्र देंगे।

(११) प्रयाग के नामी समाचारपत्र अभ्युदय (तारीख १४ जून १९२४) के एक उद्धृत लेख से सूर्य्यकान्त मणि का नाम Radium बतलाया गया है। इस सूर्य्यकान्त मणि का वर्णन यजुर्वेद अ. ४ मं. २५ में है।

(१२) जठरअग्नि–यह विद्युतअग्नि पक्काशय में भोजन को पचाने का काम देती है।

(१३) कायाग्नि—Animal Magnetism and Electricity 'फिज़िकल रिलिजन" नामी ग्रन्थ में मैक्समूलर साहेब इस बात को मानते हैं कि वेद का अग्नि शब्द विद्युत आदि अनेक अर्थों में आता है।

इस शताब्दीमें विद्युतका विचित्र उपयोग पातालनिवासी **एडिसन** नामी महाविद्वान्ने ग्रेमोफोन (शब्दधारक यंत्र) रचकर किया है। जिस प्रकार मानवी चक्षुकी रचना बिंबकला

(फोटोग्राफी) की प्रेरक आविष्कार कर्त्ताके लिये हुई, उसी प्रकार मानवी कंठ तथा कर्णकी रचना ग्रेमोफोनके आविष्कारकी प्रेरक है। जर्मन देशमें जैसाकि बडौदा राज्यके भूतपूर्व विद्याधिकारी श्रीयुत ए. एम. मसानी महोदय एम. ए. बी. एस. सी. का कथन है कि 'लेडनजार' (विद्युतरक्षकपात्र) सब लोग घरमें बच्चोंको खिलौनोंकी तरह खेलनेको देते हैं जिस लेडनजारका उपयोग भारतके कालेजोंके केवल सायंसदान विद्यार्थीही कालेज प्रयोगशालामें देख वा कर पाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि जर्मन देशमें पदार्थ विज्ञानका इतना प्रचार है कि बालकभी उसके तत्त्व समझते हैं। आजकल अमरीका (पाताल) में जहां ग्रेमोफोन बना, विद्युतविद्याका भारी प्रचार समझा जाता है। पर इससेभी अधिक विद्युतविद्याका प्रचार प्राचीन कालमें इस देशमें था जब कि ८ वर्षका बालक गुरुकुलकी प्रथम Text book (पाठ्यपुस्तक) **'शिक्षा'** नामीमें महर्षि पतंजलिकृत निम्न वचन पढता होगा जिसमें शब्दस्फोटन का वह नियम जो आज पाताल के श्री एडिसन साहेबने साक्षात किया भरा पडा था। जिन वचनों में **कायाग्नि** (शारीरिक विद्युत) किस प्रकार शब्दनाद का स्फोटक है दर्शाया गया है। उस समय हमारे आर्यबालक विद्युत संबंधी शब्दस्फोटन के मर्म को समझने की वह मेधा निःसंदेह रखते थे जो आज शर्मन (जर्मन) देश के बालक लेडनजार को समझने की वा अमरीका (पाताल) के बाल विद्यार्थी ग्रेमोफोन के स्वरूप को

समझने की रखते हैं। जिस पतंजलि ऋषि के निम्नवचन हैं वह एडिसन समान शब्दस्फोटन विद्या के मर्म को पूर्ण रूप से जानते थे। इस में कोई संदेह नहीं। आओ हम ऋषि वचनों को संस्कृत में पढ़ें:--

आत्माबुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युंक्ते विवक्षया।
मनः कायाग्नि माहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥१॥
मारुतस्तूरसि चरन् मंदं जनयति स्वरम्।
प्रातः सवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥२॥ [शिक्षायाम्]

(अर्थ) आत्मा बुद्धि से युक्त हो कर अर्थों को कहने की इच्छा से मनस् को प्रेरित करता है मनस् काया की विद्युत को धक्का देता है, और वह विद्युत वायु को प्रेरित करती है ॥ १ ॥ वायु नाभि देश से उठ कर मुख में पहुंचने का उद्योग करती हुई जब उरस् (छाती) में पहुंचती है तब मंदस्वर को उत्पन्न करती है अर्थात् उरस् में वायु पहुंचने पर मन्दस्वर वा ध्वनि उत्पन्न होती है। और वह स्वर इस प्रकारका होता है जिस प्रकारके स्वरसे प्रातःकालमें वेद पढ़ा जाता है और उस स्वरमें गायत्री छन्दकी ध्वनि पाई जाती है। *

जोतिषां ज्योतिरेकं तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु यजुः०

इस वेद वचनसे मन ज्योति अर्थात् विद्युतका बना हुआ

* बरेलीनिवासी पं. श्री खुशीलालजी शास्त्री तथा वैद्य कृत अनुवाद देखो.

सिद्ध होता है। युरोपके पदार्थ विज्ञानी मनकी रचनाके विषयमें वह तत्व अभी तक नहीं जान पाए जो उक्त मंत्र दर्शा रहा है। विद्युत विद्याकी परम अवधि मानो उक्त मंत्रमें हो गई जो मनके स्वरूपको ज्योतिमय बता रही है।

मनके इस स्वरूप ज्ञानका फल योगशास्त्रकी रचनामें हुआ और बेतारके इस युगमें अब हम समझ सकते हैं कि एक योगी दूसरेके मनपर योग आवेश, योग संदेश आदि भेज सकता है। भारतके प्राचीनकालमें बहुत योगी थे इसको सिद्ध करनेकी जरूरत नहीं। विद्युतविद्या उन्नतिके शिखरपर थी यह हमारा योगशास्त्र तथा वेद के मंत्र दर्शा रहे हैं। योग की सिद्धियां विज्ञान पूर्ण हैं। इनको समझने की योग्यता रखनेवाले उच्च पंडित आजकल संसारमें यत्न कर रहे हैं।

उत्तर दिशामें अशनिको बाणवत मंत्र में दर्शाया गया है। सब पदार्थविज्ञानी एक मतसे मानते हैं कि उत्तरीय ध्रुव प्रदेश तथा उत्तर दिशामें विद्युतका भारी कार्य्य हो रहा है। एक प्रकारका मनोहर दृश्य जिसको अंगरेजीमें 'आरोरा' कहते हैं उत्तरीय ध्रुवका विद्युतमय चमत्कार है। वृहत्संहिता में इसका नाम "परिवेष" मिलता है। अब हम पाश्चिमके विद्वानोंके लेखोंके आधारसे सिद्ध करेंगे कि उत्तर दिशामें चुंबक शक्ति और विद्युत का मानो राज्य है ताकि वेद मंत्रने जो तत्व दर्शाए हैं उनका महत्व एक जिज्ञासुकी समझमें आ सके।

अमरीकाके सुप्रसिद्ध योगी तथा "ऋषि" डाक्टर **श्री एण्ड्रो जैक्सन डेविसने** अपने ग्रन्थोंमें यह शब्द दिशा संबंधी लिखे हैं:—

" **North**:—is Magnetic, warm Positive or masculine. It attracts Electricity from the South.

South:—is electrical, cold, Feminine, negative.

South and West are Negative. They are apposite because they are opposite; they are unlike

Internal is Positive. External is Negative.

South is most Negative. North is most Positive.

East=near to Positive. West=near to Negative.

अर्थः—"उत्तरीय दिशामें चुंबक आकर्षण है। यहां तेजतत्वमें अधिक उष्णता है। यह दिशा प्रबल वा प्राणविद्युतकी है, जिसकी 'पुरुष' संज्ञाभी है। यह दिशा दक्षिणकी तरफ़से विद्युतको आकर्षण करती है।

दक्षिण दिशा विद्युतमय है। इसका तेज तत्व ठंडा अर्थात् बलहीन है, जिसकी संज्ञा 'स्त्री' वा 'रयि' शब्दसे हो सकती है।

दक्षिण तथा पश्चिम दिशाएं 'रयि' वा अतेजस्वी हैं। वे सुव्यवस्थित हैं कारण वे एक दूसरेके सन्मुख तथा विपरीत हैं। अन्तरीयशक्ति 'प्राण' संज्ञक और वाह्य शक्ति 'रयि' संज्ञक

होती है। आर्यमहामुनि पण्डित श्री गुरुदत्तजी एम. ए. डेविसजी को 'ऋषि' और श्री स्वा० दयानन्दजीको '**महर्षि**' कहा करते थे।

दक्षिणदिशा अत्यंत रयिशक्ति की है। **उत्तरीयदिशा** अत्यंत प्राण शक्ति की है। **पूर्वीयदिशा** प्राण शक्ति की निकट वर्त्ती है। **पश्चिमदिशा** रयिशक्ति की निकट वर्त्ती है।

वेद, उपनिषद शतपथ ब्राह्मण, धर्मशास्त्र तथा आयुर्वेद के अनेक प्रमाण देकर उक्त बातों की पुष्टि की जा सकती है, किन्तु ग्रन्थविस्तार के भय से विवश हम प्रमाण नहीं देंगे। सब ही जानते हैं कि शास्त्रों में देवकाल, पितरकाल उत्तरायन, दक्षिणायन, शब्द तेज प्रधान तथा तेजहीन भावों के बोधक हैं। शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, प्राण रयि पुरुष और स्त्री शक्तियों के वही अर्थ हैं जो डेविसजीने लिखे हैं। उत्तरदिशा तथा पूर्वदिशा तेजस्वी और दक्षिण तथा पश्चिम अतेजस्वी मनसा परिक्रमा के इन ही चार दिशाओं के वर्णन से सिद्ध हो रही हैं।

उत्तरदिशा की प्राण वा प्रबल विद्युत मानवी शरीर की विद्युत को जो शिर में रहती है अपनी तरफ खेंच कर शिर को निर्बल न बना दे इस लिये भारतीय आर्य्य तथा जयपाणिआर्य्य कभी अपना शिर उत्तर को कर के नहीं सोते।

अजमेर के श्रीयुत हरबिलासजी सार्डा बी. ए. ने अपने सुप्रसिद्ध अंगरेजी ग्रन्थ Hindu Superiority (हिन्दु महत्व)

में संस्कृत ग्रन्थों के अनेक प्रमाणों से दर्शाया है कि उत्तर को शिर कर के सोनेका निषेध है।

इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध तत्ववेत्ता श्रीमान् हरबर्ट स्पैंसर के निम्न वाक्य गति, विद्युत आदि के स्परूप बोधक हैं।

" The arrest of Motion may produce heat,* as by friction, electricity as by rubbed sealing wax, magnetism as by percussion on iron or Light as by the flint or steel. Heat may be transformed into motion, as in the Steam Engine; into electricity, as in the Oxy-hydrogen lantern and indirectly through electricity into magnetism. "

(अर्थ) " गति को रोक देने से रगडद्वारा उष्णता उत्पन्न हो सकती है, विद्युत की उत्पत्ति लाख को रगड़ने से, चुंबक शक्ति की उत्पत्ति लोहे के साथ टकराने से, प्रकाश की उत्पत्ति चकमक पत्थर वा फौलाद के संग टकराने से, ताप गति का रूप धारण कर सकता है जैसा कि वाष्पयंत्र में होता है, विद्युत रूप ले सकता है जैसे कि उष्णता तथा विद्युतमय ढेरीयंत्र की दशा में प्रकाश रूप ले सकता है जैसे कि प्राणायाम तथा आर्द्रजन्य मिश्रित महा दीपककी दशामें और अपरोक्ष, रीतिसे विद्युतद्वारा चुंबक शक्ति का रूप। "

उक्त लेखको पढतेही एक सज्जन विद्वान् मनमें अग्नि

* (First Principles—By Herbert Spencer.)

शब्दके धात्विक अर्थ जो **गति**के हैं याद किये विना नहीं रह सकता। वेदके अनेक मंत्र इसी तत्वके बोधक हैं कि सूर्य्यकी किरणेंही विद्युत आदि नाना रूप धारण करती हैं। " विष्णु " अर्थात् सूर्य्य प्रकाश रूपसे गगनमें विद्युत रूपसे अन्तरिक्ष और अग्नि रूपसे भूतलमें काम करता है, हमारे पाठक भूले नहीं होंगे। नित्य हवनके मंत्र जो यजुर्वेदके हैं, उनके भौतिक अर्थ किस उत्तमतासे हरबर्ट स्पैन्सरके तत्वोंके बोधक हैं इसपर जरासा विचार कर लीजिये।

१. हवनमंत्र का वैज्ञानिक अर्थ यह है कि सूर्य्य प्रकाश है और प्रकाश सूर्य्य है। सूर्य्य शब्द सृ धातु से जो गति अर्थ रखता है बना है। अतः गति प्रकाश है और प्रकाश गति है।

२. गति वर्च (बल) चुंबकशक्ति है–और चुंबकशक्ति गति समझो।

३. विद्युत सूर्य्य है और सूर्य्य विद्युत है।

४. अग्नि (ताप) ज्योति है और ज्योति ताप है।

५. अग्नि (ताप) वर्च चुंबक शक्ति है और शक्ति अग्नि।

जिस प्रकार सौर विज्ञानके तत्त्व उक्त हवन मंत्रोंमें भरे हुए हैं इनपर अधिक लेखकी जरूरत नहीं।

उत्तरीय **परिवेष** वा 'आरोरा' संबंधी अनेक अत्युक्ति पूर्ण दंतकथाएं लोगोंमें फैल रही हैं इस लिये जरूरी है कि उनके

११

यथार्थ ज्ञानके बोधक कुछ उद्धरण युरोपके नामी लेखकों के दिये जावें एक पदार्थ विज्ञानी इस विषयमें इस प्रकार लिखते हैं:— विदित रहे कि युरोपके विद्वान्‌ इनको अशनि वा विद्युत संबंधी दृश्य मानते हैं।

" The Intensity of the light emitted by Polar auroras is usually feeble, even in the most brilliant auroras.—the total illumination produced by the finest auroras is generally inferior to that of the Fullmoon, and rarely exceeds that of the moon in her first quarter. It is clear, then, that on an equal superficial area the brilliancy of the Polar aurora is far inferior to that of the moon. "

" Their frequency always diminishes when the moon is full, which shows that general illumination of the sky produced by the moon at the full, completly drowns a great number of auroras and prevents their being visible. "

(अर्थ) जब परिवेष अत्यंत प्रकाशमान हों तोभी इन ध्रुवीय परिवेषोंमें प्रकाशकी मात्रा प्रायः निर्बल होती है। उत्तमसे उत्तम परिवेषोंके समग्र प्रकाशकी संगृहीत मात्रा प्रायः पूर्णमासी के चन्द्रप्रकाशसे न्यून होती है और कभी कभी अष्टमीके चांदसे बढकर रहती है। अतः यह बात स्पष्ट है कि समान स्थलके ऊपरी क्षेत्रफल ध्रुवीय परिवेषका प्रकाश चन्द्रप्रकाशकी अपेक्षा अतिन्यून रहता है। "

" पूर्णमासीके दिनमें परिवेष घटनाएं सदैव- न्यून हो जाती हैं, यह बात प्रकट करती है कि पूर्णमासीके चांदसे जो प्रकाश गगनमें फैलता है उस हेतुसे बहुतसी परिवेष घटनाएं नष्ट हो जाती हैं और दृष्टिगोचर नहीं हो सकतीं।" उक्त पुस्तकके पाठसे निम्नलिखित बातें सार रूपसे मिलती हैं।

(१) इसमें पीला, लाल, हरा, रंग और विशेष सफेद रंग मिला रहता है।

(२) जब ध्रुवीय प्रदेशोंमें रात्रियां अधिक लंबी होती हैं तो इसकी आवृत्तिभी अधिक होती है।

(३) पृथिवीका विद्युत विकाश तथा चुंबक आकर्षण शक्तियां उत्तर ध्रुवीय परिवेष घटनाओं का मुख्य कारण हैं।

Adavnced Magnetism & Electricity By Arthur William Poyser, M. A. पुस्तकके कर्त्ता-पोयज़र महोदय लिखते हैं कि The Aurora (परिवेष) एक ज्योतिमय दृश्य है जो ध्रुवीय प्रदेशोंमें विशेष करके देखने में आता है और वायुमंडलकी विद्युत संबंधी दशापर इसका आधार है। जब यह उत्तरीय ध्रुव प्रदेशोंमें प्रगट होता है तो इसको aurora borealis or Northern light अर्थात् उत्तरीय ज्योतिधारा कहते हैं जब इसका प्रकाश दक्षिणीय ध्रुव प्रदेशमें होता है तो इसको aurora australis वा दक्षिणी परिवेष कहते हैं।

ध्रुवीय प्रदेशोंमें प्रत्येक रात को इस ज्योतिधाराका प्रकाश होता है और यह बहुत दूर प्रदेश तक फैलती है। यह ज्योतिधारा भिन्न भिन्न आकार और रंगोंमेंभी होती है (क) यह कभी कभी नितान्त पीली और इधर उधर डोलती हुई मंद प्रकाशवाली लंबी और अनियमित पंक्तिमें नाना प्रकारके रंगोंसे युक्त, भूमिकी आकाश निकट सीमासे उलंघन कर उत्तरीय लोह आकर्षक ध्रुव सीमाकी तरफ जाती है। (ख) कभी कभी यह धनुषाकार रूप ग्रहण करती है। (ग) कभी२ यह सारे गगनको ज्योतिमय बना देती है।

दो मुख्य घटनाएं सिद्ध करती हैं कि इस तेज धाराका आधार वायुमंडलकी विद्युतमयी दशापर है। (१) लोह आकर्षक प्रचण्डगति (तुफान) सदैव उनके साथ आते हैं और (२) रश्मिएं एक बिन्दुपर एकत्रित होने लगती हैं और यह बिन्दु लोह सूची (सुई) के मार्गका विस्तार है।

Lemstrom (लेम स्ट्रोम) महाशयने लेपलेन्ड देशमें अपने प्रयोगोंद्वारा सिद्ध किया है कि उत्तरीय ज्योतिधाराका कारण Positive Electricity प्राण विद्युत प्रवाह है, जोकि वायुमंडलको अपने मार्गमें उच्चतर प्रदेशोंसे भूमिकी तरफ आते हुये ज्योतिमय बना देती हैं।

महोदय वाटसन अपनी पुस्तक* में लिखते हैं कि

---

*Intermediate Physics By W. Watson A. R. C. S. D. Sc. (London)

वायुमंडलकी विद्युत संबंधी दशाका परीक्षण किया गया है और यह मालुम हुआ है कि एक अच्छी ऋतु में वायु मंडल में भूमिकी अपेक्षा अधिक शक्ति होती है और यह शक्ति संग्रह, उंचाईके साथ शीघ्र बढती जाती है। यह शक्तिसंग्रह बहुत बदलनेवाला है मुख्य करके तुफानी ऋतु में जबकि कडक और चमक होती है तो बहुत भारी भेद हो। जाता है शक्तिसंग्रह कभी पौरषीय (प्राण) और कभी Negative रयि विद्युत हो जाती है। वायुमंडलकी विद्युतका कारण जाना नहीं गया यद्यपि शक्ति विकाश संबंधी अनुसंधान इस विषयको कुछ खोलते हुये नजर आते हैं। बादल प्राय: विद्युतमय हो जाय तो चमक दो भिन्न भिन्न प्रकारकी विद्युतमय बादलोंके मध्यमें फूट निकलती है

"Magnetism and Electricity" For Students by Prof. H. E. Hadley BSc.

P. 92. "The presence of a magnetic field distributed over the surface of the Earth is rendered evident by the fact that a compass needle swings to & fro in obedience to a magnetic couple, even when the neighbourhood is free from all other magnets or magnetic material."

इसी पृष्ठ पर दिखाया है कि भूमि की मिक्नातीसी दशा जानने के लिये ठीक उत्तर से कितना अन्तर है जानना जरूरी है।

P. 112 पर दर्शाया है कि Aurora Borealis के विशेष प्रगट होने पर magnetic storms वा Electrical disturbances होते हैं जिससे उनका परस्पर सम्बन्ध सिद्ध है।

अथवा एक बादल और भूमिके मध्यमें ऐसा होता है। इस चमकका फूटनाही बिजलीका चमकना अथवा द्युति विशेष वा विद्युत है। त्रिशूल (बिजली वाहक लोहदंड) के काम प्रथम तो अपने अति निकट जगहमें बादलको प्रचण्ड विद्युतमय होनेसे रोकता है और द्वितीय उसके लिये मार्ग बनाता है जिससे वह विद्युताघात गुजर जावे यदि ऐसा अवसर पडे........त्रिशूलका एक सिरा जलमय स्थलके अन्दर ढांप देना चाहिये कारण कि जलवाली भूमि बहुत अच्छी बिजली वाहक है।

P. 121 "Modern theory suggests that the atom of any form of matter may, under normal conditions, consist of an equal number of *positive* and *negative* electrons, the latter are readily expelled from ordinary matter by slight electrical forces, and travel through vacua with a velocity comparable with that of light. The positive electron has not yet been clearly separated from the atom of matter and comparitively little information concerning it has been obtained by experimental investigation.

P. 122. "If the atom has one electron too many or too few, the atom is called a monad; if it has too many or too few it is called a diad."

P. 124. Conductors—metals, the body, water charcoal. Partial conductors—Paper, cotton wood, Insulators—Glass, sealing wax, Shellac Vulcanite or Sulphur, silk oils

Magnetic storms = प्रचण्ड लोहचुम्बक क्षोभ = स्वज, जब यह प्रचण्ड गति होती है तब ध्रुवीय ज्योति धारा का अधिक प्रकाश देखने में आता है इस से मानना पडता है कि वायुमंडल आश्रित विद्युत धारा में गडबड हो गई। जिस प्रकार समुद्र तट पर पूर्णमासी के दिन जलतरंगों का जोर होता है उसी प्रकार मानों उत्तरीय ध्रुव के पास विद्युत और चुम्बकके तूफान आते हैं।

P. 126. It is extremely difficult to impart a charge to a gas in its normal condition."

P. 131. The atom of matter probably consists of equal number of positive and negative corpuscles called electrons.

P. 229. "The ordinary laws of current flow are therefore not obeyed."

पृ. २२३ पर लिखा है कि उत्तर और दक्षिण की ओर ही बिजली की धारा की गति होती हैं। पृ. ३३६ पर बतलाया है।

"The heat due to the combustion of the coal is in the first instance converted into Mechanical Energy; this converted into Electric energy, which is again reconverted in the incandescent or arc Lamp-partly into heat-energy & partly into radiant light energy."

P. 454. "The elements or group of elements liberated are termed ions (or wanderers)"

P. 499. "Electrons=or atoms or Electricity."

P. 541. "Electric oscillations, Wireless Telegraphy."

बिजली दो प्रकार की पदार्थ विज्ञानी मानते हैं समान प्रकार की विद्युत एक दूसरे से पृथक् होती है और भिन्न भिन्न प्रकार की एक दूसरे को आकर्षण करती है।

कांच और रेशम की रगड से उत्पन्न विद्युत पुरुष वा प्राण विद्युत अथवा Positive Electricity कही जाती है। लाख और ऊनी वस्त्र (फलालेन) अथवा पशुओं की बालदार खाल की रगड से उत्पन्न बिजली को स्त्री वा रयि विद्युत अथवा Negative Electricity कहते हैं। जिन पदार्थों में समान विद्युत भरी हो वे परस्पर आकर्षण नहीं करते और इस के विपरीत जिन में प्राण रयि विद्युत हो वह परस्पर आकर्षण करते हैं।

P. 180. × "The aurora is a luminous phenomenon occurring chiefly in high latitudes & depending upon the electrical condition of the atmosphere. If it occurs in Northern latitudes it is known as aurora borealis or Northern Light while in southern latitudes it is called aurora australis. In the arctic regions the aurora occurring almost nightly, & it occasionally extends over very large areas. The light assumes varions forms & colours; e. g. (*a*) it sometimes appears merely as pale & flickering sometimes occasionally tinged with various colours. ......it sometimes forms an arc."

× Advanced Magnetism & Electricity by Prof A. W. Poyser M. A.

जिस पदार्थ में बिजली भर रही हो वह उस पदार्थ को जो बिजली से शून्य है सदैव आकर्षण करेगा ।

Electron Theory के संबंध में पश्चिमीय विद्वान् मानते हैं कि किसी भी पदार्थ के परिमाणु प्राण और रयि संज्ञक विद्युत अणु (electrons) होते हैं । उन का कथन है कि रयिविद्युतअणु प्राणविद्युतअणु को प्राप्त कर अपनी वृद्धि करते हैं । इस का भाव यह हुआ कि प्राणविद्युत सबल और रयि विद्युत अबल होती है । प्रश्न उपनिषद में इस बात को उत्तमता से दर्शाते हुए प्राण और रयि दो प्रकार की शक्तियों का जो वर्णन है वह यूरप के पदार्थविज्ञानियों के सिद्धान्त से मिलता है ।

उक्त पदार्थ विज्ञानी कहते हैं कि धातें, मनुष्य का शरीरजल और कोयला यह उत्तम प्रकार के विद्युत वाहक (Conductors) हैं और मध्यम प्रकार के विद्युत वाहक कागज, रुई, और लकडी हैं । विद्युत अवाहक पदार्थ रत्न, शीशा, बिलोर, लाख, कच्चीलाख, बाल, रेशम और सब प्रकारके तेल (चिकने पदार्थ) हैं । भारतवर्ष में चौकी, उर्णासन कुशासन और मूंज के बुने हुए लकडी के पायों वाले खाट जो बैठने वा सोने आदि में काम में लिए जाते हैं, वह मनुष्य को विद्युत आघात से सुरक्षित रखते हैं ।

भारतीय आर्य तथा जापानी आर्य कभी उत्तरदिशा की तरफ शिर कर के नहीं सोते यदि कोई भी सोवेगा तो उत्तरीय

ध्रुव में से प्राण विद्युत का भंडार शिर में से विद्युत को अपनी तरफ खेंच कर शिर को कुछ निर्बल बना देगा।

अशनि शब्द के अर्थ विद्युत की चमक के सब जानते ही हैं, पर बिजली की चमक (विद्यत चमत्कार) तब उत्पन्न होती है जब दो बादल आपस में टकरावें और उन में असमान स्वरूप में विद्युत भर रही हो अथवा भूमि तल पर विद्युतमय बादल का प्रभाव पडे। विद्युत की चमक फैलने वाली होती है।

बिजली के आघात से गृहादि सुरक्षित रखने के लिए धातु की लम्बी सींख प्रयोग में लाई जाती है। जिस घर में यह त्रिशूल लगी होती है वहां धातुद्वारा बिजली का प्रभाव भूमि के अंदर चला जाने से गृहादि आघात से बच जाते हैं। भारतीय आर्य शिवमंदिरों के ऊपर जो त्रिशूल लगाते हैं उस से मंदिर सुरक्षित हो जाते हैं। त्रिशूल वा धातु की सींख का निचला भाग किसी कूप वा जलकुण्ड में लगाना चाहिये जो कभी सूखे नहीं।

" That auroras are produced by electrical discharges in very rarefied air."

(अर्थ) बहुत सूक्ष्ममंडल में विद्युत प्रसवन द्वारा आरोरा अथवा ध्रुवीय ज्योति धारा उत्पन्न होती है।

'दी आरोरा बोरियालिस' *नामी प्रसिद्ध ग्रन्थ के कर्त्ता फ्रांस

* The Aurora Borealis. By Alfred Angot. (The International Scientific Series.)

के विद्वान् महाशय **एलफ्रेड अनगोट** लिखते हैं कि उत्तर **ध्रुवीय ज्योति धारा** का ज्ञान यूनान (ग्रीस तथा **रोम देशस्थ** विद्वानों को था और **अरस्तु** ने इस के लिये जो शब्द प्रयोग किये हैं-उनका भाव Certain Luminous Rays अर्थात् विशेष ज्योति रश्मि होगा। वृहत् संहिता में इस का वर्णन होनेसे पाया गया कि भारतीय आर्य्यों को भी इस का परिज्ञान था।

इतिहास में लोहचुंबक। सूर्य्य, चांद जब बादलों में छिप जाते हैं तब समुद्र में यात्रियों को दिशा का ज्ञान देने के लिये उत्तरीय ध्रुव की चुंबक आकर्षण शक्ति काम देती है। ध्रुवीय यंत्र की सूची (सुई) इस के प्रभाव से उत्तर-दक्षिणदिशा की सीध में स्थिर हो जाती है। इस यंत्र द्वारा मंत्रोक्त " स्वज " शक्ति अपने उपयोग को सिद्ध कर रही है। चीनी आर्य्योंने जल-यानों की सुविधा के लिये ध्रुवसूचक यंत्र बना रखा था जिस के विषय में युरोप के इतिहास लेखक मानते हैं कि **चीनियों** को मसीहसाहेब के जन्म पूर्व Compass अर्थात् " ध्रुवसूचक यंत्र का पूर्ण ज्ञान था और व्यवहार में भी वह लाते थे। "

महाभारत ग्रन्थ के पाठ से विदित होता है कि **भारतीय आर्य्य** लोहचुंबक का विज्ञान रखते और व्यवहार में लाते थे। **आयुर्वेद** के पाठ से सिद्ध होता है कि आर्य्यवैद्य तीरों के लोह अंश को खेंचने के लिये चुंबक व्यवहार में लाते थे। इन दो

ग्रन्थों के अतिरिक्त **रामायण** काल में जो सेतु बना था उस में लोहखंड को मजबूत जकडने के लिये चुंबक का उपयोग किया गया था। वेद मंत्र का **स्वज** शब्द जो अशनि शब्द से संबंध दर्शाने के लिये आया है निःसंदेह उस लोहचुंबक के आकर्षण के नियम को विश्व की सब से पहिली धर्म्म तथा विज्ञान पुस्तक वेद में जिस उत्तमता से दर्शा रहा है उस के वर्णन करने के लिये हमारे पास पर्य्याप्त शब्द कहां हैं ?

महाभारत, आयुर्वेद, और **रामायण** के अतिरिक्त **शब्दशास्त्र** अथवा **शब्दकोष** भी एक प्रबल प्रमाण है। आप्टे आदि सर्व संस्कृत शब्दकोषों में अज शब्द के अर्थ चुंबक पाषाण के होने से सिद्ध हो गया कि संस्कृतभाषी प्राचीन आर्य्य चुंबकशक्ति का पूरा ज्ञान रखते थे।

एक प्रसिद्ध पदार्थ विज्ञानी का कथन है किः—

" Principle of an electric oscillation is the root of wireless telegraphy "

" The surrounding medium is transversed by a system of electro magnetic waves. "

(अर्थ) " विद्युत की व्यापनशीलता, बेतार की तार का कारण है। विद्युत तथा चुंबकशक्ति संपन्न **तरंगें** वायुमंडल के आवरण को चीर कर निकल जाती हैं " बेतार की तार के सदन (स्टेशन) के जो उत्तम चित्र अनेक अंगरेजी ग्रन्थों में देखे जाते

हैं, उन को देख कर सहसा मन कह उठता है कि वह देखो सच्चमुच्च कैसे विद्युत के सूक्ष्म बाण छूट रहे हैं ? 'अशनि इषवः' के अलंकार की प्रथम सार्थकता तो बेतार के सदन पर ही अनुमान की जा सकती है पर एक प्रकार के अशनि कार्य्य का यह शब्द नहीं कर रहे यह तो बहुत सी प्रकार की विद्युत चमत्कारों के बोधक हैं। इस लिये ऊपर जो अनेक प्रकार के विद्युत गण का वर्णन हम कर चुके हैं उन को हमें भूलना नहीं होगा।

बृहत्संहिता अ० ३४ श्लोक १ में परिवेष का वर्णन इस प्रकार मिलता है:—

सम्मूर्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मंडलीभूताः।
नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः॥

(अर्थ) सूर्य्य वा चंद्रमाके किरण पर्वतके ऊपर प्रतिबिम्बित और पवनके द्वारा मंडलाकार होकर थोडेसे मेघवाले आकाशमें अनेक रंग और आकारके दिखलाई देते हैं उनको परिवेष कहते हैं।

ते रक्तनीलपाण्डुकापोताभ्राभशवलहरिशुक्लाः।
इन्द्रयमवरुणनिर्ऋतिश्वसनेशपितामहाग्निकृताः॥ २॥

(अर्थ) लाल, नीला, थोडासा श्वेत, कबूतरी रंगका, धूमके रंगका, शबल (अनेक प्रकारके रंगोंसे युक्त), हरिद्वर्ण और शुक्लवर्णके परिवेष विद्युत, सूर्य्य, चांद, तारा, वायु और अग्नि आदि उत्पन्न होते हैं।

इसी ग्रन्थ के भूकंप प्रकरण में ग्रन्थकर्त्ताने स्वयं इन्द्र शब्द के अर्थ **विद्युत** लिये हैं और वही इन्द्र शब्द यहां पर आया है अतः उस के अर्थ निःसंदेह विद्युत के सिद्ध हो गये।

'आरोरा" संबंधी जो कुछ विचार युरोप के पण्डितों के हैं वे हम दर्शाचुके हैं वे सब एक मत से **विद्युत** को इस का मुख्य कारण बतलाते हैं। यहां भी इन्द्र अर्थात् विद्युत का प्रथम वर्णन होने से वह एक भारी कारण सिद्ध होता है।

'दीबुक ऑफ नालेज' आदि अनेक अंगरेजी पुस्तकों में आरोरा (परिवेष) केरंगदार चित्र दिये गये हैं उन में प्रायः वह सब रंग देखनेमें आते हैं जो यहां दूसरे श्लोकमें गिनाए गये हैं।

उपसंहार:—उपसंहार में हम कह सकते हैं कि इस मंत्रने जिन तीन कांडों का वर्णन किया है वह यथार्थ हैं। वर्तमान पदार्थ विज्ञानी भी इन्हीं तत्वों का समावेश उत्तरादिशा में करते हैं। मंत्र बतला रहा है कि

(१) उत्तर दिशामें सोम अर्थात् शीत प्रधान है।

(२) स्वज अर्थात् लोहचुंबक आकर्षण शक्ति इस दिशामें रक्षकका काम कर रही है। वर्तमान् संसारके जलनायकोंके Compass अर्थात् ध्रुवसूचकयंत्र इस दिशाकी स्वज शक्तिके अटल प्रभावकी सूचना दे रहे हैं।

(३) १ व्यापनशीला विद्युत २. प्राण विद्युत, और नाना

प्रकारकी बिजलियोंका यह मुख्य सदन है। परिवेष आदि नाना प्रकारके अशनि जन्य चमत्कारी दृश्य उत्तरीय ध्रुवकी भारी शोभा हैं।

मंत्रार्थ पर विचारः-उदीचीदिक् यह शब्द कैसे भाव पूर्ण हैं। इनके धातु वा मूल अर्थ समझ लेनेवाला झट उस दिशाकी विशेषताको अनुभव कर सकता है। आप्टेकृत शब्द कोष में **उदि** शब्दके अर्थ To rise (as a Star, cloud etc.) अर्थात् उठना (**तारा** वा बादलका) दिया है, फिर इसी पृष्ठपर **उदीचीका** संबंध **उदंचू** शब्दसे दर्शाया है और उदंच्के अर्थ Turn or going upwards लौटना वा **ऊपर जाना** दिये गए हैं।

अतः कोषके इन सब अर्थोंपर विचार करनेसे **उदीची—दिक्** इन शब्दों के धातु वा मूल अर्थ निस्संदेह **उच्च उठे हुए तारेकी दिशा**के हुए। जब लोग संस्कृत भाषा खूब समझते होंगे उस समय **उदीचीदिक्** कहनेके साथही ऊपर उठे हुए **ध्रुवतारे**की दिशाका बोध कैसी सरलतासे हो जाता होगा?

१. (**उदीचीदिक्**) उच्च तारे (**ध्रुवतारे**) की दिशाका **(सोमोः)** शीत **(अधिपति)** स्वामी है **(स्वजो)** सम्यक नायक शक्ति वा चुंबक आकर्षण **(रक्षिता)** रक्षक है। **(तेभ्यो नमो)** इत्यादिके अर्थ पूर्ववत् जानिये।

त्रिशूल और विद्युतः—भारतीय आर्योंके शिवमंदिरोंपर जो त्रिशूल लगी रहती है, उसके द्वारा विद्युत जमीनमें प्रवेशकर

जाती और मन्दिर वा मकानको बचा लेती है। प्रत्येक आर्य-गृहमें लंबी लोहेकी सीख वा त्रिशूल जरूर होनी चाहिये।

आर्य सज्जन संध्या करते समय जो कुशासन, चौकी वा उर्ण–आसन पर बैठकर ईश्वरका ध्यान करते हैं, यह बडी वैज्ञानिक प्रथा है। कारणकि उक्त तीनों आसन Non Conductor मंदवाहक होनेसे शरीरकी विद्युतको बाहर जाने नहीं देते और बाहिरकी विद्युतके भी अन्दर आने नहीं देते।

पूजाके समय जो काष्टके पौवे, खडावें वा पावडियां पहनी जाती हैं, यहभी मंदवाहक होनेसे विद्युत रक्षक हैं। जापान तथा फ्रांसके ग्रामोंकी प्रजा आज तक काष्ठके उत्तम पौवे पहनती हैं जो चलनेमेंभी उत्तम होते हैं। कंबल ओढना पूजा वा यज्ञके समय इसी उद्देश्यसे है।

आजकल सर्वत्र टीनके पत्रोंके मकान लोग बनाते हैं जो कि ठीक नहीं कारण कि धातु उत्तम वाहक Good Conductor है। इस कारण पुराने ऋषि धात के पत्रों से मकानों की छत्तों को बचाते थे। लोहे का खाट जो Couch (पलंग) के नाम से प्रसिद्ध हैं वे हानिकारक हैं। भारतीय आर्य्य जिस प्रकार लकडी के पायों वाले मुंजतृण से बने हुए खाटों का उपयोग करते थे वह " मन्दवाहक " होने से अति उत्तम थे। ग्रामों में आर्य्यजनता अब भी उन्हीं खाटों पर सोती है।

विद्युत के आघात से बचने के लिये प्रयाग के एक उत्तम हिन्दी मासिक में जो कुछ उपयोगी बातें निकली हैं वह नीचे उद्धृत करते हैं।

"इन्द्रका वज्र अब भी कभी कभी पहाडों क पत्थरों के टुकडे टुकडे कर डालता है, वृक्षोंको तोड देता और लोगोंके प्राण ले लेता है, किन्तु आजकल इसका नाम बदल गया है। इसे अब बज्र नहीं कहते अब इसका नाम विद्युत वा बिजली है।" *

"बिजली गिरनेपर आदमी फौरन ही नहीं मरता, बल्कि बहोश हो जाता है। अगर इसको कृत्रिम रूपस सांस लिवाई जाय तो इसके प्राण फिर आ सकते हैं।

बिजलीसे बचनेके उपाय:—

(१) किसी हरेभरे पत्तेदार बडे पेडके नीचे हरगिज न खडे हो।

(२) खुली जगह याने खेतमें, दरियाके किनारे न खडे हो बल्कि लेट जाओ।

(३) मिलोंकी चिमनी अथवा भोंपूके पास न खडे हो।

(४) पशु गाय भैंसको किसी पेडके नीचे या तारके हातेमें इकट्ठा होने न दो।

(५) किसी ऐसे मकानकी शरण न लो जिसमें धातुकी छत्त है और लकडीके खम्भे हैं।

---

* (देखो-प्रयागका मासिक पत्र चांद बाबत सितंबर १९२४)

' यदि कभी ऐसा हो कि कोई दरया (नदी) में या सडक पर खुले मैदान में सफर करता हो और जोरों के साथ बिजली चमकने और कडकने लगे तो सब से बेहतर यही है कि नाव की तह पर जाकर लेट जाय या सडक पर ही लेट रहे । "

" मकान में रहते हुए बिजली के कडकते समय धात के बरतन आंगन में न पडे रहने देने चाहियें, बल्कि सब को कोठरी में या छत के नीचे रख लेने चाहियें । लेकिन छाता लिये रहना इस समय खतरनाक नहीं । "

भाषामें मंत्रका सार

१. उच्च तारे वा ध्रुव तारे की दिशा का शीत स्वामी है ।

२. सम्यक नायक-शक्ति वा चुंबक-आकर्षण रक्षक है और

३. नाना प्रकार की बिजलियां, बाणवत् हैं । इत्यादि ...

ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः ॥५ ॥

मंत्र में आये हुए ध्रुवा शब्द का अर्थ आप्टे कृत शब्द कोष में Retentive Tenacious as in ध्रुवा स्मृतिः अर्थात् **धारक** व मजबूत पकड़ने वाले के हैं । इस लिये ध्रुवा दिक के अर्थ उस कोष के अनुसार **धारकदिशा** के हुए ।

ऋषि दयानन्द कृत यजु० भाष्य अ० १४ मंत्र १५ में **ध्रुवा** शब्द के अर्थ दृढ़ किये गये हैं । पुनश्च उक्त आर्ष भाष्य अ० १५ मंत्र ५९ में ध्रुवा शब्द के अर्थ निश्चल किये गये हैं । इस लिये ध्रुवा दिक् को हम धारक दिशा कह सकते हैं ।

ऋषि दयानन्द ने धारण शब्द का भाव आकर्षण आर्ष भाष्य में किया है जैसा कि हम अब दिखाएंगें, वह ठीक है ! कारण यह कि जब हम कहते हैं कि यह पीठासन (कुर्सी) जमीन पर स्थित है तो पदार्थ विज्ञान की शैली में यह कहा जावेगा कि इस की स्थिति व दृढता का कारण पृथिवी की आकर्षण शक्ति है जिस प्रकार पत्र मंच (टेबल) पत्रों को धारण किये रहती है उसी प्रकार भू आकर्षण पत्र मंच को धारण किये हुए है । वास्तव में विचार कर देखें तो भू आकर्षण का दूसरा नाम

धारकशक्ति ही है। अतः धारक दिशा के अर्थ भू आकर्षण की दिशा के हुए।

जिस प्रकार पूर्वदिशा सूर्य के उदय की दिशा है, उसी प्रकार नीचे की दिशा भू आकर्षण की दिशा है, यह सर्वमान्य सिद्धान्त युरोप के समस्त महा विद्वान् एक मत से स्वीकार करते हैं। न्यूटन साहेब ने वृक्ष से सेब को नीचे की तरफ गिरते हुए अनुभव कर भूआकर्षण का मन में निश्चय किया था। वेद मंत्र में भी नीचे की ही दिशा का नाम ध्रुवा (धारक) व आकर्षण गुणवाली दर्शाया है। 'ध्रुवादिक्' के अर्थकोष अनुसार धारक दिशा के हम कर चुके हैं। धारक शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं प्रथम धारक पदार्थ पृथिवी की दिशा दूसरे धारक शक्ति की दिशा। यह धारकशक्ति भी उसी कठिन पृथिवी पदार्थ की ही है, और जिस प्रकार कठिन (Solid) पदार्थ नीचे को जाते हैं और नीचे की दिशा से विशेष संबंध रखते हैं ठीक वैसे ही भूआकर्षण भी नीचे की दिशा में ले जाने वाली शक्ति है। ऋषि दयानन्दने अपने भाष्य में धारण शब्द के भाव में आकर्षण शब्द का प्रयोग किया है। यथा:—

ब्रह्माणिमे मतय:.........आशासते प्रति; हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ऋ० मं० १ अ० २३ सू. १६५ मं. ४

(" अर्थ).........(इमा) इमानि (हरी) धारणाकर्षण गुणौ।" भाषा (" इमा) इन (हरी) धारण आकर्षण गुण "

युरोप के भूगोलशास्त्री हमें बतलाते हैं कि भूलोक के उष्ण

कटिबंध देशों में दो प्रकार की विलक्षण बातें पाई जाती हैं एक यह कि इन भूमध्यस्थ खंडों में नाना प्रकार के **बडे से बडे पशु** और दूसरी यह कि नाना प्रकार की **बडी से बडी लता** तथा **वृक्ष** आदि भारी संख्या में मिलते हैं। साथ ही वह कहते हैं कि पशु और वृक्षों की इस भारी संख्या का कारण ताप का प्रधान पन है और इसी लिये सर्व भूगोल की पुस्तकों में इस कटिबंध का नाम ही **उष्ण कटिबंध** रखा गया है। इसी को अंग्रेजी में Torrid Zone कहा गया है।

वेदमंत्र में जिस की व्याख्या हम यहां करेंगे यही तत्व विद्यमान् हैं। वेदमंत्र बतलाता है कि भिन्न भिन्न रंग वाली गरदनें और लता वृक्षों की भारी संख्या इस ध्रुवा व धारक दिशा में है और इस निचली दिशा में 'विष्णु' का राज्य है। अब हमें विष्णु शब्द के संबंध में कुछ विचार करना होगा। हमारे पाठक जानते हैं कि 'इदं विष्णु विचक्रमे' इस प्रसिद्ध वेदमंत्र की व्याख्या निरुक्त में मौजूद है उस के अनुसार विष्णु के अर्थ वहां सूर्य्य और उस के तीन स्वरूप तीन पाद कहे हैं। प्रथम स्वरूप उस का आकाश में **सूर्य्य रूप** ही है दूसरा अन्तरिक्ष में **विद्युत रूप** और तीसरा पृथिवी के अन्दर **अग्नि रूप** है। ऋ. मं. १ अ. २२ सू. १६४ के मं. १०, में "**त्रीन्**" शब्द आया है और उस का अर्थ ऋषि दयानंदने वेदभाष्य में प्राचीन **निरुक्त** अनुसार प्रथम **सूर्य्य तेज** दूसरा **विद्युत तेज** और तीसरा **अग्नि तेज** दर्शाया है।

यहां पर जब नीचे की दिशा का वर्णन है तो विष्णु शब्द के तीसरे अर्थ निःसंदेह अग्निही हो सकते हैं जब हम किसी कोठरी के द्वार गरमियों की ऋतु में दो पहर के समय बंद किया करते हैं तो उस समय प्रकाश तो कोठरी में आनेसे रुक जाता है कारण कि कोठरी में अन्धेरा छा जाता है पर अग्नि का दूसरा रूप ताप कोठरी को तपा देता है और चौकी आदि सब पदार्थ गरम तवे के समान तपते हुए छूने पर प्रतीत होते हैं। इस से पाया गया कि विष्णु शब्द के जो धात्विक अर्थ प्रवेश करने के हैं वह उस के ताप रूप में अति विशेष पाये जाते हैं। अतः जब अग्नि पृथिवी के अन्दर प्रवेश करता है तो उस के अन्दर ताप की मात्रा बढ जाती है। भूकंप की घटनाएं और भूगर्भ शास्त्रियों के कथन इसी बात को पुष्ट कर रहे हैं कि भूमि के अन्दर ताप (विष्णु) का राज्य है। यही बात वेद मंत्र से सिद्ध हो रही है। लौकिक शब्द कोषकार आप्टेने विष्णु शब्द के जो अर्थ दिये हैं उन में निरुक्त का भाव तथा उस के धातु अर्थ विद्यमान् हैं। यथा " विष्णुः [विष्व्यापने नुक्] " "........विष्णु विशधातो प्रवेशनात् "। " Name of Agni " " अग्नि का नाम "।

आर्य्य समाज भूषण रायबहादुर, श्री ठाकुर दत्तजी धवन, ने वैदिक मैगेजीन (बाबत मास आगस्त १९२४) में जो अनुसंधान पूण वेद मंत्र की व्याख्य की है उस में

विष्णु शब्द के भौतिक अर्थ 'ताप' (Heat) भी उत्तमता से किये हैं।

कल्माषः शब्द के अर्थ आप्टेकृत कोष में जहां काला दिया हुआ है वहां पर दूसरा अर्थ "The Variegated Colour" अर्थात् भिन्न भिन्न रंगवाला भी है, जो अर्थ यहां पर संगत हैं। उक्त आप्टेकृत कोष में ग्रीवा शब्द के अर्थ Neck, The back part of the neck गरदन, गला, गलपीठ किये हैं। पुनश्च आप्टेकृत कोष में वीरुध शब्द के अर्थ इस प्रकार मिलते हैं।

(1) A spreading Creeper=फैलने वाली व विशाललता.

(2) A branch or shoot=वृक्ष शाखा.

(3) A Plant which grows after being cut } छांटीवृक्ष, केला आदि:

(4) A creeper=लता

(5) A shrub in general=छोटा वृक्ष

इन पांच अर्थों पर विचार करने से प्रतीत होगा

कि इन में विशाल, व फैलने वाली लता और साधारण लता } लता वर्ग

के अतिरिक्त शाखा वाले बडे वृक्ष छांटी वृक्ष छोटे...वृक्ष } वृक्ष वर्ग

का वर्णन होने से सर्व वनस्पति जगत आगया। अतः

हमने संक्षेपसे जो अर्थ वीरुध शब्द के ऊपर लता वृक्षादि किये वह कोषकार के भाव के अनुसार ही हैं।

मंत्रकाभाषार्थः—(ध्रुवादिक्) (क) कठिन पृथिवी तथा (ख) धारकाकर्षण की दिशा का (**विष्णु**) ताप अधिपति है (**कल्माषः**) भिन्न भिन्न रंगवाली (**ग्रीवा**) गरदनें पशू प्राणी रक्षक समान हैं (**वीरुधः**) लता वृक्षादि....बाण वत् हैं।

(क) ध्रुवादिक् का प्रथम भाव उस भूमि की दिशा का है जिस में **ध्रुवपन** अर्थात् कठिन गुण अधिक हो। नदी नद व समुद्र के अति निकट भूमि होती है वह कठिन गुण से रहित होती है। इस लिए उस पर मकान बनाने से उन के गिरने का भय होता है। भूकंप प्रदेश की भूमि भी अचल व कठिन गुण खो बैठती है। इस लिये जहां विष्णु कोप अथात् ज्वालामुखी पर्वत हों वहां से बहुत दूर कठिन व ध्रुव भूमि पर मकान बनाने चाहियें। यही बातें आज युरोप के अनुभवी विद्वान् गृहभूमि संबंधी दर्शा रहे हैं जैसा कि आगे अभी हम वर्णन करेंगे।

(ख) विश्वकर्मा (इंजिनियर) लोग मकान बनानेमें सबसे भारी पथ्थर वा अत्यंत कठिन गृहसामग्री मकानके नीचेके खंडों और आधार स्थलमें भू आकर्षणके कारण रखते हैं। मकानकी दीवारों छत्तों आदि सबके बनानेमें भू आकर्षणके प्रभावको लक्ष्यमें रखा जाता है। भारतीय आर्य्य अनेक प्रकारके मन्दिरोंकी रचना जैस

शिवालय हैं, इसी धारक शक्ति (भू आकर्षण) के विचारसेही बनाते हैं। सबसे विशाल तथा सबसे भारी भाग शिवालय आदि भारतीय मन्दिरोंका नीचे होगा और यही क्रम स्वयं ईश्वर रचित पहाडोंमें देखा जाता है। गुप्त व मिश्र देशके स्तूपभी भारतीय आर्य मन्दिरोंके समानही नीचेसे विशाल तथा अतीव कठिन और ऊपरको पर्वतके शिखराकार बनाये गये थे।

जब प्राचीनकालमें आर्य जनता संस्कृत भाषा भाषीथी तब ध्रुवादिकूके दोनों अर्थ, "धारक आकर्षण शक्ति तथा कठिन भूमिकी दिशा" सब विद्यार्थी किस उत्तमता तथा सरलतासे समझते होंगे?

विष्णु अर्थात् तापका राज्यभूमिके अन्दर तथा ऊपर है। अन्दर जहां इसका राज्य है वहां वहांसे 'भयंकर गर्भ' lava रस यह पदार्थ निकलता है। बाहर अर्थात् भूतलके जिनखंडोंपर इसका राज्य है वहां पशु और लता वृक्षादि जगतकी अतीव वृद्धि है।

भिन्न भिन्न रंगवाली गरदनें कहनेका भाव निःसंदेह उन पशुओंसे है जिनकी गरदनें होती हैं। इन शब्दोंपर विचार करनेसे निम्नलिखित बातें पाई जाती हैं।

(१) भिन्न भिन्न का शब्द बहुत संख्याका होना दर्शा रहा है जहां बहुतसी वस्तुएं होंगी वहांही हम कह सकेंगे कि यहां भिन्न भिन्न प्रकारके पदार्थ हैं।

(२) भिन्न भिन्न रंगोंका वर्णन दर्शाता है कि वह पशुप्राणी विचित्ररंग रूपवाले होनेसे अति सुन्दरभी हैं। यही बात आज भूगोल यात्री तथा भूगोल शास्त्री लिख रहे हैं कि भूलोकमें सबसे बड़े, सबसे पुष्ट, सबसे सुन्दर रंगरूपवाले पशु, तथा पक्षी ' उष्ण कटिबंध'के प्रदेशोंमेंही पाए जाते हैं।

सर्व प्रकारकी बड़ी बड़ी विचित्र लताएं और सर्व प्रकारके बड़ेसे बड़े वृक्ष अति स्वादिष्ट तथा पुष्ट फलोंसे लदे हुए आपको उष्ण कटिबंध प्रदेशोंमेंही मिलेंगे। उष्ण कटिबंध प्रदेश तथा उसके निकटवर्ती खंडही मनुष्यके रहनेके सबसे उत्तम स्थान हैं। इसी लिए **महर्षि मनुजी**का कथन सत्य है कि जहां **कबरा हिरण** विचर सकता है वही यज्ञ भूमि तथा आर्य व श्रेष्ट मनुष्योंका स्वाभाविक निवास स्थान है। इस वेद मंत्रने बतला दिया है कि मनुष्यको (१) मकान कठिन भूमिपर बनाने चाहिएं ताकि विष्णु कोप से बच सके, और भूआकर्षणको लक्ष्य में रखकर गृहसामग्री लेवें और गृह रचना करें।

(२) उन उन खंडों में रहना चाहिये जहां नाना प्रकार के सुन्दर प्राणी रह सकते हैं।

(३) उन उन खंडों में बसना चाहिये जहां पर लतावृक्ष आदि भारी संख्या में हों ताकि उस को फल अनाज श्रीफल-(मेवे) आदि उत्तम आहार सुगमता से मिल सकें। उत्तरीय व दक्षिणीय

ध्रुव प्रदेश में जहां शीत का राज्य है जहां गाय घोडा पशु प्राणी जी नहीं सकते, जहां फल अनाज मेवे मिल नहीं सकते, वहां कभी रहने का आग्रह नहीं करना चाहिये। यद्यपि स्वदेश भक्ति मनुष्य का धर्म है पर ईश्वर भक्ति उस से भी बढकर परम धर्म हैं। इस लिये यदि अपने देश में भूकंप बहुत आते हों, खाने को कछ न मिले, हिम व शीत के मारे कोई पशु जी न सके, तो ऐसे आइस लैंड आदि खंडों में रहने का मोह नहीं करना चाहिये देशकाल को देखकर सब काम करने चाहियें।

प्रश्न हो सकता है कि ध्रुवा दिक् इन शब्दों से कहां यह भाव निकलता है कि भू आकर्षण का विचार करते हुए कठिन भूमि पर रहो और वीरुध इषवः से कहां यह बात निकली कि जहां फल अनाज अधिक पैदा हों उन देशों में रहना। इस का उत्तर यह है कि इसी मंत्र के अगले भाग में जो नमन शब्द का व्यवहार किया गया है और जिस की विस्तार पूर्वक व्याख्या हम पहले कर आये हैं-उस के अनुसार हमें पदार्थों के गुण जान कर उन के अनुकूल चलने के लिए सत्कर्म करने चाहियें। विष्णु के अर्थ **ताप** समझ लेनेसे कुछ लाभ नहीं यदि हम ताप से लाभ लेने पर विचार तथा व्यवहार न करें।

आजकल युरोप में Geology (भूगर्भविद्या को नवीन कहने का Fashion (रिवाज) चल रहा है पर वास्तव में यह

विद्या पुराने काल में पूर्ण उन्नति कर चुकी थी इस के अनेक प्रमाण मिलते हैं।

(१) तल वितल रसातल और पाताल आदि पृथिवी के अन्तरीय सप्त भागोंका वर्णन।

(२) बृहत्संहिता में जो भूकंप का वर्णन है वह युरोप के अनुसंधान से कहीं बढकर है।

(३) ऋग्वेद मं० १, अ० २२, सू० १६४ के ८ वें मंत्र में 'गर्भरसा' (Lava) आदि का वर्मन इतना स्पष्ट है कि उस के साथ ही उस को भयंकर अर्थात् 'बीभत्स' कहा गया है।

(४) वेद मनुस्मृति तथा सूर्य्य सिद्धान्त में जो युगों का वर्णन है उसतक पूर्ण रूपसे अभी युरोप के पंडित नहीं पहुंचे। ऋ. मं. १ अ. २२ सू. के मंत्र ८ में पृथवी के "भयंकर गर्भ रस" का वर्णन है। यही भयंकर गर्भरस ज्वालामुखी पहाडा द्वारा बाहिर निकलते और भूकंप आदि भयंकर कार्य करते हैं। उक्त मंत्रके निम्न शब्द कैसे भाव पूर्ण हैं देखिये और विचार कीजिये। "(बीभत्सुः) जो भयंकर (गर्भरसा) जिस के गर्भमें रस रूप विद्यमान्" (ऋषि दयानन्द भाष्य)

युरोपके पंडितभी मुक्त कंठसे यही कह रहे हैं कि पृथिवी के अन्दर बडी गर्मी है और ज्वालामुखी पर्वत उसी अग्नि तथा उस के कार्य गर्भरसको निकालते रहते हैं। जब वर्षाद्वारा अथवा

समुद्र तटकी तलेटीके फटनेसे ज्वालामुखी प्रदेशमें जलका प्रवेश भूमिके अन्दर हो जाता है, तो प्रबल वाष्प के बन जानेसे भूकंप हो जाता है। कारणकि वह वाफ ऊपर निकलना चाहती है। उसी समय ज्वालामुखी पहाड प्रचंड होकर " भयंकर गर्भरस " जिसको अंग्रेजीमें " लावा " कहते हैं निकालते हैं।

ज्वालामुखी पर्वत ईश्वरने मानो लाल रंगके बोधक पाटिये (साइनबोर्ड) वारेलकी लाल झंडियों समान भयप्रद भूमिपर लगा दिये हैं, और यदि मनुष्य पशुओं समान अपनी मेधा तथा योग दृष्टिसे काम लेवें तो वो ऐसे भयप्रद देशको निवास स्थान न बनावे। भू तृशणा के कारण लोग नये राज्य लेने इधर उधर सर्वत्र अज्ञात् द्वीपों वा देशोंमें जा बसते हैं तो वह ज्वालामुखी देशोंमेंभी रहनेके लिए विवश हो जाते हैं मनुष्य स्वाभाविक दशामें कभी भूकंप वाले देशोंमें वसना नहीं चाहेगा।

ध्रुवादिक् वाले इस मंत्रने कैसी उत्तमतासे मनुष्यको आदर्श भूमिकी यह पहचान बतलाई हैं। ध्रुवा शब्दके अर्थ जैसा कि पाठक ऊपर पढ चुके हैं दृढधारक वा जहां लोक प्रसिद्ध हैं वहां वही ऋषि दयानन्दकृत भाष्यमभी हैं। इस लिये दृढ व धारक भूमि वही हा सकती है, जो भूकंपसे रहित हो। भूकंप कितनी हानि जनमंडलकी करता है यह सब विद्वान् जानते ही हैं।

युरोप के विद्वान् लिखते हैं कि भूलोक में सब से

अधिक जिस देश में भकंप होता रहता है वह एक आर्यदेश जयपाण (जापान) है। एक माप-यंत्र भूकंप का वेग जानने के लिये प्रोफेसर जान मिलनी ने जापान में रह कर बनाया है। इस के अतिरिक्त जापानी आर्य्य पंडितोंने ऐसे यंत्र बनाये हैं जो भूकंप के आने की पहले सूचना दे सकें। यह यंत्र अभी पूर्ण उन्नत अवस्था में नहीं कहे जा सकते। वेगमापक यंत्र का एक लाभ यह है कि मकान तथा पुलोंकी सामग्री चुनने में सहायता मिलती है। १९२४ के वर्ष में जो अत्यंत भकंकर भूकंप जापान में हुआ और ज्वालामुखी पर्वतने जो भयंकर रस निकाला उससे भूकंप सूचक यंत्र सबही निष्फल सिद्ध हुए और जापानी आर्य प्रजाकी जो भारी हानि हुई वह अत्यंत शोकजनक है।

युरोपके अनेक विद्वान् भूकंपके विषय पर दीर्घ विचार करनेके पश्चात् आजकल इस मतपर पहुंचे हैं कि नरम, पोची वा **कोमल** भूमिपर **मकान** आदि **नहीं बनाने चाहियें।** यही तत्व परिक्रमणके इस वेदमंत्रमें विद्यमान् हैं जो ध्रुवादिक्का पाठ सबको पढा रहा है। लीजिये निम्नलिखित अंगरेजीका वाक्य एक पश्चिमी विद्वान्का आपके सामने रखा जाता है।

" It is better to build upon **hard** than soft ground and to keep away from the edges of cuttings in the ground. "(The Book of Knowledge- Vols 13-14).

(अर्थ) कोमल भूमिकी अपेक्षा कठिन (ध्रुव) भूमिपर और जहां भूमिमें फाट हों उनके सिरोंसे दूर मकान हों।

बृहत्संहिताके ३२ वें अध्यायमें भूकंपके विषयपर उत्तम चर्चाकी गई है। उसमें **वायु, अग्नि, इन्द्र, और वरुण,** चार कारण भूकंपके दर्शाये हैं। आठवें श्लोकमें लिखा है कि वायव्य मंडलका फल एक होता है और नवमें श्लोकमें इसका वर्णन किया है कि धूमसे छाए हुये आकाशमें पृथ्वीकी धूलको उडाता हुआ, वृक्षोंको तोडता, हिलाता, प्रचंड पवन चला करता है और सूर्य किरण मंद हो जाते हैं।

श्लोक दसवें में कहा है कि वायव्य भूकंपसे धान्य, जल, और बनौषधियोंका क्षय होता है शोथ दमा उन्माद और खांसी के रोग सौदागर लोगोंको होते हैं। श्लोक तेरवेंमें कहा कि सात दिनतक तारा और उल्काके गिरनेसे ढका हुआ आकाश दाह युक्त और कुछ दीप्ति के समान होता है और सात ज्वालावाला अग्नि पवनका सहायी होकर निकलता है। इससे आगे चौदहवें श्लोकमें कहा है कि आग्नेय वर्गमें भूकंप होनेसे मेघनाश, जलाशयोंका सूखना, राजद्वेष, दाद, विचर्चिका, ज्वर, विसर्पिका और पांडुरोग होते हैं। दीप्ति तेजा और प्रचंड अश्मक, अंग, वाह्लिक, तंगन कलींग, वंग और द्रविड देश और अनेक प्रकारके शत्रगनपीडित होते हैं। श्लोक सत्तरवेंमें इन्द्र वा बिजली मंडलका स्वरूप ऐसा कहा है कि चलते हुए पर्वतके समान रूप धारी, गंभीर-शब्दकारी, तडित (बिजलीकी कडक) युक्त, बंद, भैंस, भ्रमर और सांपके समान काले मेघ जलको बरसाते हैं। इन्द्र वर्गमें भूकंप

होनेसे समुद्र और नदियोंमें रहनेवाले राजा और गणपतियोंका विध्वंस होता हैं, और अतिसार गलग्रह, वदनरोग और वमन-कोप होता है। श्लोक उन्नीसवेमें कहा कि काशी युगंधर, पौरव, किरात, कीर, अतिसार, हल, मद्र, अर्बुद, सुवास्तु, और मालव देशमें पिडा होती है और अभिलाषाके अनुसार वर्षा होती है। श्लोक इक्कीसवेंका सार यह है कि बिजली कर के हुये उद्भासित् देह बहुतसे बादल मधुर शब्द करते हुये जलधारा रूप अंकुरोंसे बरसते हैं। और श्लोक बाईसमें कहा है कि इस वारुण मंडलमें भूमि कंप होनेके समुद्र और नदियोंके आश्रयमें रहनेवालोंका नाश होता है यह वृष्टिकारक, द्वेषहीन, और गोनर्द, चेदी कुकुर किरात और विदेहवासियोंका नाश करता है॥ २२॥

The Book of Knowledge (दी बुक आफ नॉलेज) के कर्त्ताने भूकंप संबंधी अनेक उत्तम लेख भिन्न भिन्न भागोंमें लिखे हैं और जो युरोप अमरीकाके विद्वानोंके इस संबंधी विचार हैं वह दर्शाते हुए एक स्थलपर लिखा है कि इस विषयमें हमारा ज्ञान पूर्ण नहीं और "guess" शब्द जिसका अर्थ अटकल-पच्चु है इसकाभी इसके लिये प्रयोग किया है। युरोप आदिके भूगोलशास्त्री भूकंप संबंधी जो मत रखते हैं वह साररूपसे यह है कि जब वर्षा वा समुद्रजल ज्वालामुखी पर्वत के अन्तरीय अग्नि कुंडों में पडता है तो भांप उत्पन्न हो जाती, जो ऊपर निकलना चाहती है। इस भांप की टक्कर से भूकंप होता है। जल आग

भांप वा वायु तीन शक्तिएं मिलकर भूकंप उत्पन्न करती हैं यह युरोपियन मत है। वृहत्संहिता का यह अंश कहा जा सकता है। इस के साथ जब हम वृहत्संहिता के उक्त चार कारणों पर विचार करें तो कहना पडेगा कि उक्त चार कारण अपूर्ण नहीं किन्तु पूर्ण हैं।

आप्टेकृत कोष में **पाताल** शब्द के अनेक अर्थ दिये हुए हैं। उन में उस के निम्नलिखित अर्थों पर हमें यहां पर विचार करना है।

(१) Submarine Fire अर्थात् समुद्रतलकी निचली आग और (२) नागदेश। इसके संबंध में उक्त कोषकारने सप्त-तलों के नाम भी इस प्रकार दिये हैं। इन तलों का वर्णन दर्शाता है कि भूगर्भशास्त्र में पुराने ऋषि कैसे प्रवीण थे. १. अतल २. वितल. ३. सुतल ४ रसातल ५. तलातल ६. महातल ७. पाताल।

ज्वालामुखी पर्वतों से जो 'लावा' बाहिर निकलता है वह '**भूगर्भरस**' है। भूमि के गर्भ में उक्त प्रकारका रस होता है इस को जनाने के लिये उक्त ७ तलोंमें से **रसातल** शब्द की तरफ पाठकों का ध्यान हम दिलाते हैं और इसके साथ कोषकार ने **पाताल** के एक और अर्थ '**समुद्र तलकी निचली आग**' जब किये हैं तो रसातल के अर्थों को और भी पुष्टि मिल जाती है। पाताल के बाहिर के भागका नाम **नागदेश** था और वहां की राजकुंवरीसे भारतीय आर्य्य महा-वीर अर्जुन का पुनर्विवाह हुआ था यह बात महाभारत से सिद्ध है।

Geology जियालोजी वा भूगर्भविद्या के मत से भूमि के तल किस किस प्रकार के हैं उनका वर्णन उक्त कोषकार की सप्तनामावली से विदित हो रहा है। रसातल और पाताल के अर्थ कोषों में देखकर प्रत्येक जिज्ञासु हमारे साथ कहने को तैय्यार होगा कि पूर्वकाल में भूगर्भ का ज्ञान इस देश में अति उत्तम था।

भूगर्भरस कैसा भयंकर होता है इस को भूकंपके समय ज्वालामुखी पहाड सिद्ध करते हैं उसी भूगर्भरस का वर्णन निम्न लिखित वेदमंत्र में अति उत्तमता से पाया जाता है। इस वेदमंत्रसे निम्न तत्व सिद्ध होते हैं।

(१) भयंकर भूगर्भरस पृथिवी के गर्भ में है जो भूकंप पर ज्वालामुखी पर्वतों द्वारा निकला करता है।

(२) यह गर्भरस उस समय इस के अन्दर था जब यह नियम बद्ध पृथिवी नहीं बनी थी किन्तु प्रचंड क्षोभयुक्त स्वतंत्र अपिंड रूपा थी। वही गरमी इस के गर्भ में आज तक है।

(३) यह गरमी इसकी अन्न आदि उपजाने के प्रशंसित काम में लग रही है।

(४) उष्णकटि बंध बर्ती देशों में जो भूलोक में अग्नि प्रधान खंड हैं, फल—अन्न आदि अधिक उत्पन्न होते हैं।

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः

(ऋग्वेदः मं. १, अ. २२ सू. १६४ मंत्र ८)

पदार्थः—(बीभत्सुः) जो भयंकर (गर्भरसा) जिस के गर्भ में रसरूप विद्यमान् (निविद्धा) निरन्तर बंधी हुई (सा) वह (माता) पृथिवी (धीती) धारण से (अग्रे) सृष्टि के पूर्व (पितरम्) सूर्य के (ऋते) विना सब का (आ, बभाज) अच्छे प्रकार सेवन करती है जिस को (हि) निश्चय के साथ (मनसा) विज्ञान से (सं, जग्मे) संगत होते प्राप्त होते उस को प्राप्त हो कर (नमस्वन्तः) प्रशंसित अन्न युक्त हो कर (इत्) हो (उपवाकम्) जिस में वचन मिलता उस भाग को (ईयुः) प्राप्त होते हैं " ॥

ज्वालामुखी पर्वतों की ज्वाला, होम अग्नि तैलदीपक मोमबत्ती वा भोजनालय में जलती हुई लकड़ियों की **ज्वाला** के तीन भाग इस काल तक युरोप के विद्वान् दर्शाते हैं। पर **मुंडक उपनिषद्** में ज्वाला के सप्त विभागों के नाम दिये हुए हैं। यजु. अ. १७ मं. ७९ जो इस प्रकार है अग्नि की सप्त जिह्वाओं का मूल दर्शा रहा है। **सप्तते अग्ने समिधःस.. जिह्वाः**

(अर्थ) हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् जैसे आग के (सप्त समिधः) सात जलाने वाले (सप्त जिह्वाः) सात काली, किराली आदि लाटरूप जीभ हैं ....। * (वेद भाष्य पृ. १८३२)

---

* सप्तजिह्वाः—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, विस्फुलिङ्गिनी, विश्वरूची ।

युरोप के विद्वान् अग्नि का एक भारी गुण पदार्थों के अन्दर प्रविष्ट होना बतलाते हैं और इस गुण की सिद्धि में ज्वालामुखी पर्वतों का दृष्टान्त देते हैं। अग्नि के उक्त गुण का वर्णन यजुः अ. १४ मं. २७ में इस प्रकार मिलता है:—

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्त श्लेषोसि कल्पेतां

(अर्थ)........(अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (अन्तरा) भीतर प्रविष्ट होने वाले।

युरोप आदि के भूगर्भ शास्त्रियोंने जो बडे बडे परिश्रम भूमि के अन्तर स्वरूप वा गर्भ जानने के लिये किये हैं, उन के लेखों का सार यहां पर देना प्रसंगानुसार ही है इस लिये दिया जाता है।

एक नामी ग्रन्थकार के लेखानुसार जमीन खोदने पर पहिले "Beds of gravel" मिलती हैं इन में बढ़े बड़े हस्थी गेंडा आदि पशुओंके अस्थिशेष मिलते हैं। इस के पीछे दूसरे तल में मृत्तिका विशेष मिलती है और इस में विचित्र सींगदार पशुओं, बडे बडे कछुओं, खजूर वृक्षों और ताप प्रधान देशों के फलवृक्षों और घूंघामत्सों के अस्थिशेष पाए जाते हैं।

तीसरे तल में चाक (धौली) मट्टी मिलती है। इस तल में बडे बडे अजगर आदि के अस्थिशेष हैं।

चौथे तल में नाना प्रकार की छोटी मछलियों तथा जन्तुओं के अस्थिशेष मिलेंगे। पांचवें तल में अति बिचित्र अस्थिशेष हैं।

छटे तल में कोई अस्थिशेष नहीं मिलते—यह जीवजन्तु रहित तल के समान है। इस तल में अत्यंत ताप है।

भूकंप, पर्वत बनाने में सहायक हैं और Radium सूर्यकान्त मणि की विद्यमानतासे पृथिवी की उष्णता बहुत स्थिर है। (देखो दी बुक आफ नॉलेज भाग ११, १२).

एक और ग्रन्थकारने जो इस विषय संबंधी अपनी पुस्तक में लिखा है—उस का सार यह है कि:—

सब से ऊपर के वायुमंडल की उंचाई २०० मील तक है और पृथिवी का पहिला तल Soil नाम का है*। दूसरा तल ध्रुव पर्वत (Solid Rock) का है। तीसरा तल Bed of Ocean समुद्र तल है, और समुद्र के नीचे फिर ध्रुव पर्वत (Solid Rock) का चौथा तल है। इन चारों तलों को बाह्य भूपृष्ठ (Outer crust) समझना चाहिये। रसायणशास्त्री वा Chemists भूगर्भशास्त्री वा Geologists इन ही तलों के पदार्थों को खोद कर दर्शन कर परीक्षा करते रहते हैं।

अन्तरीय तलों में धातें आदि भारी पदार्थ हैं और भारीपन के अतिरिक्त अन्तरीय तलों में ताप का महान् तथा अत्यंत राज्य है। इन अन्तरीय तलों के ताप सूचक सृष्टि में खानें, तप्तकुंड,

---

* आजसे २० वर्ष पूर्व महोदय हलैंड फोर्ड के नैसर्गिक भूगोल में वायु की ऊंचाई ४० मील दर्शाई थी। २०० मील की ऊंचाई वादिक तत्त्व के अधिक निकट है।

तप्तकूप तप्त झरने और ज्वालामुखी पर्वत हैं। जिन जिन देशों में तप्तकूप वा तप्त झरने होते हैं उन तप्तजलों के निकट ही ज्वालामुखी पर्वत मिलते हैं।

Hotsprings & geysers तप्तझरने और तप्तजलधारा, आइसलैंड में बहुत हैं और वहां इन तप्तजलों के पास ही ज्वालामुखी पर्वत हैं। ज्वालामुखी पर्वत मानो अन्तरीय भूमि के Cracks फाट हैं। ७५ मौलिक पदार्थ रातदिन अपना प्रभाव भूमि के तलों पर डाल रहे हैं।

Soil—**प्रथम तल** में छोटे वृक्ष घास तथा अनाज उगते हैं।

Sub Soil **दूसरे तल** में विशाल वृक्षों के मूल होते और **पत्थरों के भाग** मिलते हैं।

Rock **तीसरे तल** में लोहा अदि खनिज पदार्थ, और रेत मिलेगी। इस को **पर्वती तल** कहना चाहिये। विदित रहे कि पर्वत दो प्रकार के हैं। एक वह जो जल कीच द्वारा बनें और दूसरे जो ताप द्वारा। नदी, नद जो मट्टी समुद्र में डालते रहते हैं यह सैंकड़ों वर्षों में जा कर समुद्र के बीच नये पर्वत बनाती है। यह जलीय पर्वत रेतीले पर्वत कहलाते हैं। अग्नि द्वारा बने हुए पर्वत अति कठिन होते हैं। लावा वा भूगर्भ रस जो ज्वालामुखी पहाड़ों द्वारा निकलता है उस लावा को द्रवीभूत पर्वत कह सकते हैं। ठंडा तथा संघट हो जाने पर इस से ध्रुवीय पर्वत बनते हैं।

युरोप के विद्वानों के विचार हमने भूमि के तलों संबंधी ऊपर दर्शा दिये इन को पढ कर पाठक अब सहज से उन सात तलों के साथ स्वयं तुलना कर के हमारे साथ कहने को तैय्यार हो सकेंगे कि भारतीय शास्त्रों में जो उन की गिनती तथा क्रम हैं वह कैसे युरोप के उच्च से उच्च वृत्तान्तों के साथ मिलते हैं।

भूगर्भविद्या संबंधी वेद में अनेक मंत्र हैं यहां एक मंत्र देना हम उचित समझते हैं:—

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यंच मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपुच मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ (यजु. अ. १८ मं. १३)

युरोप के विद्वानों के उपरोक्त लेख में प्रथम, Belt of Gravel है वेद में इस को 'अश्मा' क्या ठीक कहा है। साधारण पत्थरों का यह तल है।

दूसरे तल में London clay वा मृत्तिका विशेष मिलती है, वेद में इस का सुनाम "मृत्तिका" है। तीसरे तल में चाक का पर्वत मिलता है उस का समावेश "गिरय" शब्द में उत्तमता से हो रहा है। 'पर्वती वस्तु' चौथे तल में अग्निजन्य पर्वत वा अधिक कठिन पर्वत जानो। इन को यहां वेद में पर्वत शब्द से क्या ठीक दर्शाया है पांचवें तल में सिकता अर्थात् समुद्र में जानेवाली रेत का वर्णन है। छटे स्थल पर वेद में **'वनस्पतय'**

शब्द आया है। इस के अर्थों को जानने के लिये आओहम आप्टेकृत कोष देखें। उस में निम्न प्रकार के लेख हैं।

वनस्पति = बनस्पति वन = 'Forest' = जंगल

पति = 'a roct' = जडवामूल i. e. The root of the forest जंगली जड

अतः वनस्पति के **अर्थ** The root of the forest. **हुए** Mineralcoal (पत्थर) का कोयला जोहस छटे तल पर मिलता है वह उन वृक्षों का कोयला है जो भूमि के अन्दर दब गये और अन्दर के ताप के कारण कोयले का रूप बन गये। पत्थरका कोयला वास्तव में जंगली वृक्षों की जडें वा मूल थे। इस लिये मंत्र में आये हुए **वनस्पत्य** शब्द के अर्थ यहां पर प्रसंग अनुसार वृक्ष नहीं किन्तु **वृक्षमूल** हमें लेने होंगे।

सातवें स्थल पर हिरण्यम् (सोना) श्यामम् (नील-मणि) लोहम् (लोहा) सीसम् (सीसा) त्रपु (जस्त) इन खनिज पदार्थों का वर्णन है। यह खनिज पदार्थ जैसा कि ऊपर युरोप के एक विद्वान् का वचन लिखा है उस के अनु-सार भूगर्भ के अन्तरीय प्रचंड ताप के भारी सूचक हैं। इसके अतिरिक्त वेद में भूमि के 'भयंकर गर्भरस' का वर्णन होनेसे वह ज्वालामुखी पर्वतों के लावा का बोधक है।

सूर्यकान्तमणि Radium संबंधी कई मंत्र हैं। वैशेषिक दर्शन पर जो प्राचीन प्रशस्तपाद भाष्य है उस में

अग्नि को एक प्रकारका आकर्ज-अग्नि दर्शाया है । जिस का संबंध जैसा कि उसका नाम बतलाता है खनिज पदार्थों से है । यह भूगर्भ अग्नि है ।

कूप और भूकंप

प्रोफैसर मिलनी का मत है कि भूकंप के दुष्ट प्रभाव से घरों को बहुत कुछ बचाने के लिये जरूरी है कि इनके आसपास कूप, गढे, खाई और गहरी छोटी नदियां होनी चाहियें । भूकंप का कंपन कूप, नदी और खाई में जा कर कम हो जाता है इस लिये कि फटी हुई भूमि उस प्रभाव को ले लेती है । पर भारी फटी हुई भूमि पर मकान नहीं बनाना चाहिये । कहते हैं कि रोमन प्रजा इस बात को जानतीथी कि गुफाएं, कूप और खानें उन गृहों को जो उन के निकट हों भूकंप के प्रभाव से बचाते हैं । कपवा नामी मीनार इसी लिये भूकंप के प्रभाव से बचा रहता था कि उस के निकट बहुत से कूप होते थे । देवनेयर नामी इतिहास कर्त्ता का वचन है कि राजधानी बनाते समय रोमन प्रजा इसी उद्देश्य से कूप बनाती थी । बालब्रह्मचारी अमेरिका के महा विद्वान् हम्बोल्ट महोदय वर्णन करते हैं कि कूप रखने की प्रथा सानडोमिंगो में जारी थी । इस लिये गहरी खाई, कूप और नदियों का बस्ती के निकट होना जरूरी है । राजस्थान के प्रधान संस्थान उदयपुर राज्य और किशनगढ राज्य में राजभवन के आसपास उत्तम जलाशय पाए जाते हैं ।

भारत वर्ष में वाटरपम्प जलनल के प्रचार से लोग कूप रचने की उत्तम प्रथा भूल रहे हैं। जलनल गरमियों में अधिक गरम और शीतकाल में अधिक शीत होने से स्नान और पान में उत्तम कूप जल से बहुत पीछे हैं। जब वर्षा ठीक नहीं होती वा जब वाटरपंप के मूल जलभंडार को पानी पर्य्याप्त नहीं मिलता तो देश भर वा नगर भर में काफी जल वरस जान पर भी वाटरपंप का अनोखा काल हो जाता है। वेद में कूप महिमा बोधक मंत्र हैं और आर्य्य लोग कूप आदि जल दान के निमित्त सर्वत्र ग्रामों में बनवाते थे। अब जल नल के युग में पुनः कूप महत्व समझ में आने लगा है।

Times of India (टाईम्स ओफ इन्डिया) सन् १९२४ के एक अंक में लिखा है कि "दस मनुष्यों के बराबर एक बैल खेती का काम करता है।" भारत में खेती के लिये कूपसे जल निकालने तथा हल चलाने के लिये बैल कितने सस्ते और उपयोगी हैं।

'वीरुध' को बनस्पति जगत् समझना चाहिये। शब्दकोष के अनुसार बडी तथा छोटी दो प्रकार की बेलें और बडे, छोटे तथा मध्यम प्रकार के वृक्ष आदि, समग्र बनस्पति का समावेश 'वीरुध' शब्द में हो गया। पाठकों के लिये प्रसिद्ध लताओं के कुछ नाम नीचे लिखते हैं।

लता वर्गः—(१) पेठा, लौकी, भिंडी, रामतोरी, मूंगतोरी, कारेला, ककोडा कद्दू, सेम, चीबडे, गिलोडे, परवल।

(२) खरबूजा, फूट, तरबूज, सरदे, गरमे, द्राक्ष, अंगूर, लघु-द्राक्ष (किशमिश)।

(३) गिलो, सोमलता, पान।

(४) बट मोगरा, जूइ, जाई, चमेली इत्यादि।

वृक्ष वर्ग:-केवडा, चंपा, देवदारु (दयार) कपूर, पालाश, आमला, बहेडा, शमी, चंदन, अन्धरक बिल, पीलु, बादाम, उनाव, सेब, तरेल (छोटे सेब), बेदमुशक, पोदीना, तुलसी, केसर, लवंग, इलायची, केतकी, सौंफ, सुपारी मोगरा अजवायन, चीड, कमल, पीपल, कीकर, पाकर, वट, अगर, तगर, धूप काशमीरी इत्यादि।

भूलोक के उष्णता प्रधान देशों का वर्णन आजकल के पश्चिमी भूगोलशास्त्री जो अपनी पुस्तकों में लिखते हैं उस का सार हम नीचे देते हैं (१) यह प्रदेश घने जंगलों के लिये विख्यात हैं। सदा हरे रहने वाले बडे बडे वृक्ष इन में नित्य उगते रहते हैं। "Huge creeping plants with stems a foot thick, cover many of the giant trees or hang from their branches." अर्थात् " बडी बडी भारी लताएं जिन के डाल एक एक फुट मोटे हैं, बहुत से बडे बडे ऊंचे वृक्षों को ढांपे रहतीं अथवा उन की शाखाओं पर से लटकी रहती हैं। "

दक्षिणी पाताल खंड (अमेरिका) के अमेजन नामी महा नद के प्रदेश में इन जंगलों का नाम ' Selvas ' (सेलवास) है।

उक्त जगह पर तथा **कोंगो** और जेम्बजी नदियों के प्रदेशों में जंगली वृक्ष इतने घने पत्तेदार हैं कि उन के छाया से नीचे की भूमि में सदा सायंकाल का अन्धकार बना रहता है।

नाना प्रकार के बडे बडे ऊंचे खजूरों के वृक्ष अपनी सीधी गरदनें आकाश में किये हुए खडे हैं समुद्र तट के प्रदेशों में स्वादिष्ट केलों के जंगल हैं।

(२) बडे बडे वीर और भयंकर कुटिचर बंदर जो इन बनों में वास करते हैं, वह नित्य वृक्षों पर ही कूदते रहते हैं और कभी नीचे नहीं आते, यह वृक्ष ५० अथवा ६० फीट ऊंचे होते हैं। सिंह, वाघ, चीता, गैंडा हाथी मगरमच्छ, वराह (जलहाथी) ऊंट और जिराफ (लंबग्रीवा) आदि भयंकर तथा बलवान प्राणियों के यह खंड सचमुच निवास स्थान हैं। बडे बडे अजगर, सर्प, नाग, और नाना प्रकार के बडे तथा विचित्र रंगों के पक्षी इन खंडों में भारी संख्या में पाए जाते हैं।

बडे बडे ऊंचे कद के बली तथा भयंकर बंदर, गोरीला (घोरबन्दर) चिम्पानजी (कपी) और औरंगाटंग (बनमानस) की यही जन्मभूमि है। कीडे मकोडे, मक्खी, मच्छर, मकडी आदि के अनन्त झुंड इन खंडों में मिलेंगे।

Mahogany (तून) Ebony (आबनूस) और Teak (सागौन) से सदा हरे रहने वाले बडे भारी उपयोगी वृक्षों के भारी जंगल आपको यहां मिलेंगे। रबर वृक्ष के जंगलों का यह

आदि स्थान है। कोनेन आदि अनेक उत्तम औषधियां यहां पाई जाती हैं। गाएं, बैल, भैंस हिरन बकरी और भेडें इन देशों में बहुत मिलती हैं। याक और Bison (भीषण बैल) से सींग वाले पशु इन प्रदेशों में बहुत हैं। तिब्बतवाले याक की सवारी करते तथा बोझ लादते हैं। हिरन जाति में सबसे बडा हिरन **सांभर** जिस के घने और झाडीदार सींग होते हैं वह भारत वर्ष के पहाडों तथा जंगलों में पाया जाता है।

चीतलहिरन "Spotted Deer" जो खुले जंगलों में विचरता है कैसा सुन्दर प्राणी है? काला हिरन ("Black Buck") जो एक चोकडी (छलांग) २० फीट की कर जाता है, उस के समान तेज भागने वाला हिरन जाति में कोई नहीं।

Ibexdeer (काशमीरी हिरन) हिमालय प्रदेशों तथा काशमीर में मिलता है। सब प्रकार के मृत पशु खाने वाले शृगाल (Jackals) गामों की बडी सेवा करते हैं।

Giraffe (लंबग्रीवा) पशु, पत्ते खाता है। यह १८ वा १९ फीट ऊंचा होता है।

Ostrich (उष्ट्रेव) वा शुतरमुर्ग सब से **लंबी गरदन वाला** और दौडने वाला पक्षी है। अफ्रीका की गरम भूमि इस का निवास स्थान है। लंबे से लंबे मनुष्य से भी यह लंबा होता है। इस की ऊंचाई ७ फीट होती है।

Bison (भीषण बैल) भारत वर्ष के पश्चिमी घाट के घने जंगलों में मिलता है।

" Is Very strong and is not afraid even of the tiger. It has very large horns and a very thick hide. Bisons are always found in herds. "

अर्थात् " यह बहुत बलवान् और वाघ तक से भी नहीं डरता। इस के सींग बडे लंबे और इस की खाल बडी मोटी होती है। यह सदैव झुंडों में ही पाए जाते हैं। "

" Deserts are hot or cold. The former are covered with sand or loose stones and the latter with snow or ice and in neither is there any vegetation. "

(अर्थ) " उजाड प्रदेश गरम वा ठंडे होते हैं। जो गरम हैं वह रेत वा कंकरी से और ठंडे बरफ वा हिम से ढके रहते हैं, और दोनों में से किसी में भी बनस्पति नहीं उगती। "

" The general rule as to the plants or flora & the animals or fauna of countries is this. Warmth is favourable & cold is unfavourable to animal or vegetable life. "

अर्थ–किसी देश के पौधों, पशुओं वा बनस्पति संबंधी यह साधारण नियम है कि गरमी पशु वा बनस्पति जीवन के लिये हितकारी और शीत हानिकारक है।

" The largest trees and the biggest land animals are found at the tropical region. "

(अर्थ) सब से महान् वृक्ष और सब से बडे भूतल के पशु उष्णता प्रधान प्रदेश में मिलते हैं।

" In the Arctic regions no trees at all are found... ...and even the men who live there are dwarfs. At the Poles all life ceases."

(अर्थ) ध्रुवीय प्रदेशों में वृक्षों का सर्वथा अभाव है.... और जो मनुष्य वहां रहते हैं वह भी वामन (बौने) होते हैं। ध्रुवीय प्रदेशों में जीवन रह नहीं सकता"

" The gorilla is the biggest and strongest of all the apes and it is often 6 feet high. He has very long powerful arms which reach below his knees, he can swing himself 20 feet from bough to bough. **Apes like men** are **diurnal in their habits,** i. e. They sleep at night and are awake in the day. The apes live in the trees & can not walk up right on the ground, for their feet are like hands & have no in-step. They build huts out of branches & leaves for their families in the trees. **They Feed on fruits and nuts** "

(अर्थ) घोरी वानर सब से बडा और बन मानस जाति में सब से बलवान् है, प्रायः ६ फीट ऊंचा होता है। उस की भुजाएं बडी लंबी और शक्तिवान् होती हैं जो उस के घुटनों के नीचे तक पहुंचती हैं। वह एक शाखा से दूसरी तक २० फीट झूल सकता है। बनमानस (वानर) मनुष्य के समान

दिन को कार्य्य करने का स्वभाव रखते हैं अर्थात् वह रात को सो जाते और दिन को जागते हैं। वानर (बनमानस) वृक्षों में रहते, और भूमि पर ठीक सीधे खडे हो कर नहीं चल सकते, कारण कि उन के पैर हाथों की न्याई हैं, और तला नहीं रखते। वह वृक्षों में, अपने परिवारों के लिये शाखाओं और पत्तों की कुटियां बनाते हैं। **वह फल और मेवे (श्रीफल) खाते हैं।"**

"**कलमाषग्रीवा**" पर विशेष वक्तव्यः—ग्रीवा शब्द के अर्थ गरदन के हैं और ग्रीवा कहने से ग्रीवा वाले सब प्राणियों को सब समझ सकते हैं। आंगल भाषा में केवल 'हाथ' कहने से लेखक मनुष्य वा श्रमजीवी मनुष्य का बोध होता है। यह तो रही भाषा की बात इस के अतिरिक्त हम कह सकते हैं कि यह **ग्रीवा** शब्द का उपयोग बडा भाव पूर्ण हुआ है। सब जानते हैं कि भारत वर्ष के सब सरकारी स्कूलों तथा कालेजों में जो Natural History (सृष्टिबोधक वृत्तान्त) के उत्तम चित्र विद्यालयों के कोठों में लटकाए जाते हैं उन में एक महत्व पूर्ण रंगदार उत्तम चित्र जो पशु प्राणी बोधक है वह आकार परि-मान अर्थात् प्राणी की ऊंचाई को लक्ष्य में रख कर बनाया गया है।

उस में प्रथम संख्या में **जीराफ** अथवा **लंब ग्रीवा** पशु आता है जो भूमि पर खडा हो कर ऊंचे से ऊंचे वृक्ष के पत्तों तक मुख पहुंचा सकता है। अनेक Museums (संग्रहस्थानों) में उस के अस्थिपिंजर वा भुस भरी खाल देखने में आती है। फिर हाथी ऊंट फिर मनुष्य तथा अन्य पशु प्राणी आते हैं। ताप

प्रधान देशों के मनुष्य पशु तथा सब प्राणी लंबे होते हैं। ग्रीन लैंड आदि उत्तरीय ध्रुव प्रदेशों में मनुष्य जो एसकीमो नाम वाले हैं उनका कद मानव ज्ञाति में " **सबसे छोटा** " होता है। अतः एसकीमो का भावार्थ हम यदि बौना वा नाटा कहें तो कुछ भी अतिउक्ति नहीं। उक्त एसकीमो विवश केवल मांसाहार करते हैं और बल में अफरीका के उन केले खानेवाले श्यामवर्णी लोगों से बहुत ही न्यून होते हैं। पंजाब के गामों के जाट तथा नामधारी सिख जो मांस भक्षण कभी नहीं करते उक्त एसकीमो लोगों से बहुत ही बढ कर वीर भारी बलिष्ट होते हैं। ईश्वरने सबसे लंबे पशु वा मनुष्य उन देशों में बनाए हैं जहां कि तापका राज्य है और जहां फल मेवे और अनाजों से जंगल भरपूर हो रहे हैं। यही प्रदेश भूलोक में उत्तम हैं और हिम् आच्छादित खंड जहां पशु प्राणी शीतके मारे जी नहीं सकते वह उत्तम देश नहीं कहला सकते। युरोप के डाकटर कह रहे हैं कि मनुष्य के शरीर पर लंबे रोम नहीं इस लिये यह ताप प्रधान देशों में वसने के लिये ईश्वरने बनाया है।

ग्रीवा के संबंध में दूसरी बात हमें उसकी मोटाई वा स्थूलपन संबंधी विचार करनी चाहिये। स्थूल ग्रीवा बलका चिन्ह है।

सिंह, वाघ, हाथी, गेंडा, ग्राह (हिपोपोटमस), गोरिला (घोर बंदर) आदि स्थूलग्रीवा धारी प्राणी कैसे बलवान होते हैं? और यह सब उक्त खंडों में ही पाए जाते हैं?

१४

पक्षियों के राजा मोर पक्षी की ग्रीवा बहुत लंबी होती है और बडे बडे हंस (बगले) आदि पक्षी लंबी ग्रीवा वाले होते हैं। उष्ट्र पक्षी वा शुतुर मुर्ग सबसे लंबा दौडने वाला पक्षी भी वहीं होता है। मोटी वा स्थूलग्रीवा वाले पक्षी तोता मैना आदि मधुर गायन करने में समर्थ हैं। अतः ग्रीवा शब्द का प्रयोग अति सार गर्भित है।

कमल, गुलाब, आदि अनेक प्रकार के फूल इनही ताप प्रधान देशोंमें होते हैं। उर्द आदि दालें जो मांस से दुगनी बलकारक हैं वहभी इन्हीं प्रदेशोंमें मिलती हैं। दालों के संबंध में **सरस्वती** नामी मासिक के प्रसिद्ध संपादक श्री महावीर प्रसादजी के निम्न लिखित वचन मनन करने योग्य है, " बहुतेरी दालें मांससे दूनी पोषक होती हैं। रोटी भातसे बदन में गरमी ज्यादा पहुंचती है और दालोंसे मांस लोहु ज्यादा बनता है।"

देवदिन और देवरात्रि उष्ण कटिबंध, भूगोल शास्त्रियों के लेखानुसार उस प्रदेश का नाम है जो **मकर** और **कर्क** रेखाओं के मध्य में है। भू मध्य रेखासे यह साड़े २३ अंश उत्तर और साड़े २३ अंश दक्षिण को है। उक्त उत्तरीय खंड का नाम उत्तरीय तापकटि है, जो लगभग १५०० मील तक है। दक्षिण तापकटि भी लगभग १५०० मीलतक नीचे को गई है। अतः ताप कटि बंध का विस्तार ३००० मीलतक का माना गया है। उत्तरीय ध्रुव कटिबंध का विस्तार १५०० मील

तथा दक्षिणीय ध्रुव कटिबंध का विस्तार १५०० मील है। इन ध्रुवीय कटिबंध प्रदेशों में ६ मास का दिन और ६ मास की रात होती है। मनुस्मृति में इन को देव दिवस और देवरात्रि कहा गया है। उत्तरीय ताप कटि और उत्तरीय ध्रुव कटि के मध्यके देश को उत्तरीय **समशीतोष्ण कटि** कहते हैं जिस का विस्तार ३००० मील का है। वनस्पति जगत् के कुछ उपकार हम नीचे लिखते हैं।

(१) भोजन के लिये फल, श्रफिल (मेवे) अनाज यह देता है।

(२) कपास और सन के पौधों से उत्तम वस्त्र हम बनाते हैं।

(३) गिलो, चरेता, कौड, नीम, इन्द्रजौ त्रिफला कुनेन आदि महौषधियों--का यह दाता है।

(४) रेंडी, सरसों, महुए के कोये, नीम के बीज से अनेक प्रकार के आखों की हानि न करने वाले उत्तम जलाने के तेल हम प्राप्त करते हैं।

(५) तिल, नारयल, बादाम, आदि का यह भंडार है।

(६) वनस्पतियों से वायु शुद्ध होती रहती है।

(७) जहां कहीं वनस्पति नहीं जम सकतीं वहां मनुष्य वा पशु भी नहीं पाये जाते। राजपूताना, सहरा, गोबी इत्यादि की मरूभूमि और उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुव प्रदेश में आजकल कोई नहीं बसता और न बस सकता है क्योंकि वहां वनस्पतियां जम नहीं सकतीं।

(८) मनुष्य का मल मट्टी से मिला हुआ खाद हो जाता है, और पौधे इस खाद को अपना खाद्य (भोजन) बना हमारा उपकार करते हैं।

सिंहारी भैंसा.

" The South African buffalo with his sharp, hooked horns is one of the most terrible animals that man can meet. He is so fierce that he will charge a lion and has even been known to conquer the king of beasts." (The Book of Knowledge-Vol. 22)

अर्थः—" दक्षिणी अफरीका का भैंसा (अरणा) जिस के सींग मुडे हुए तीक्षण होते हैं उन सब पशुओं में से जो मनुष्य को मालूम हुए हैं परम भयंकर है। वह इतना प्रचंड है कि वह सिंह पर आक्रमण करता और पशुओं के राजा पर विजय प्राप्त करता हुआ भी जाना गया है।" (देखो--दी बुक आफ नालेज)

अफरीका का गोरीला (घोरालय) बन्दर भी बडा वीर तथा भयंकर पशु है। उक्त सिंहारी भैंसा तथा घोरालय (गोरीला) बन्दर मांस खाने वाले नहीं यह सब कोई जानता है।

कटिबंधोंका स्वरूप युरोप के पंडित अब विवष बदलने लगे। जब मनुष्य तर्क ऋषिकी शरण जाता है तो उसको अपने ज्ञान के दोष मालूम होने लगते हैं। पहिले पश्चिमी भूगोल शास्त्री ३००० (तीन हजार) मील मानते थे। अब उन्होंने अनुभव और तर्क ऋषिकी सहायतासे जाना कि पहिली मानी हुई सीमासे

भी अधिक तापका राज्य है। E. Marsden (ई. मारसडन) साहेब की नवीन प्रकाशित भूगोल पुस्तकमें जो १९२३ के सन में मुद्रित हुई लिखा है कि तापकटिबंध का विस्तार ३००० के स्थानमें ६००० मील गिनना चाहिये‡।

युरोपवालों को तापकटिबंधकी सीमा अब दुगनी करनी पडी। किन्तु वेदमें आदि सृष्टिसे लेकर आजतक देखिये क्या अच्छा अटललक्षण विष्णुराज्य (ताप कटिबंध) का कर दिया कि जहां नाना प्रकार के पशुप्राणी तथा लता वृक्ष बनस्पति उत्तम प्रकारकी भारी संख्यामें उगती हो।

काशमीर काबल जहां द्राक्ष, अंगूर, किशमिश की लताएं हैं। तिब्बत जहां सोमलता उगती है। यह सब विष्णु लोक के ही प्रदेश हैं। यही नहीं परंच जहां जहां भूलोकमें मनुष्य के खानेको अनाज उगते हैं वह सब देश विष्णुकटिबंध के समझो। महर्षि मनुजीने क्या अच्छा लिखा है कि जहांतक चितकबरा मृग चर सकता है वह यज्ञ देश है। इसकी विशेष व्याख्या संस्कार चन्द्रिका में देखिये।

मारसडन साहेब के उक्त उत्तम भूगोल पुस्तक में एक लेख ऐसा है। ' Wheat is a crop of the Warmer and drier parts of the Temperate Zone.

‡ देखो—Geography for Senior classes

(अर्थ) " गेहुंका फसल (पाक) समशीतोष्ण कटिबंध के **अधिक गरम** तथा शुष्क खंडों में होता है। "

चावल और गेहुं संबंधी इन के अन्यत्र लेखों पर से पाठक जान सकते हैं कि यह भारत वर्ष जिस में अति उत्तम उक्त अनाज पैदा होते हैं **ताप के राज्य** का देश सिद्ध हो रहा है।

हमारे लेख का सार यह है कि पुराने वैदिक आर्य्य ऋषि, मुनि जो इस भारत में बसे तो उक्त वेद मंत्र उन को बतला रहा था कि जहां ताप का राज्य होता है वहां ही बनस्पति जगत् फलता फूलता है और इस लिये भारत देश में सर्व प्रकार के अनाज फल उत्तम प्रकार के होते हैं। आज युरोप के विद्वान् ताप प्रधान देशों और फल अनाज की महिमा यात्रा तथा अनुभव द्वारा समझने लगे हैं। सच्च तो यह है कि बह वैदिक ज्ञान के सूर्य्य की ज्योति में आ रहे हैं। वैदिक आर्य्य पहिले तिब्बत में बसते थे फिर आबादी बढ जाने से तिब्बत में जो सिन्धु नदी निकली है उस के तट पर से इस आर्य्यावर्त में आये और बसे।

———

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रोरक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः अथर्व. का. ३ अ. ६ । व. २७ मं. १–६ ॥

पृथिवी के ऊपर चारों तरफ वायुमंडल है । इस की ऊंचाई यूरोप के विद्वानों के नवीन मत अनुसार २०० मील तक है आज से २५ वर्ष पूर्व उक्त विद्वान् वायुमंडल की ऊंचाई ६० मील तक मानते थे । अब उन का मत अधिकयुक्त है । वे वायु द्रव्य के दो मुख्य भाग मानते हैं । एक का नाम **ओक्सीजन** अथवा (प्राणवायु) और दूसरे का **नाइट्रोजन** अथवा (व्यान वायु) । श्वासद्वारा जो वायु अन्दर जाता है उस को वह ओक्सीजन और हम प्राणवायु कहते हैं और श्वासद्वारा जो मलीन वायु बाहिर निकलता है उस को वह 'कारबोनिक एसिड गैस' जिस को हम 'अपानवायु' कहते हैं है । आप्टेकृत कोष में अन्दर जाने वाले वायु का नाम प्राणवायु और अन्दर से बाहर आने वाले श्वास का नाम "**अपान**" दिया हुआ है यथाः—

अपान........Breathing out

प्राण.......Inhale air (देखो कोष)

प्राण अपान शरीर में बल देने तथा मलमूत्र निकालने में सहायक हैं । आक्सीजन को तो वह जीवन वा बल दाता मान

चुके हैं। पर अपान के दूसरे कार्य को मानवी शरीर के अन्दर मल निवारक शक्ति के रूप में वह अभी तक अनुभव नहीं कर सके।

अपानवायु जो मलीन वायु के रूप में हम श्वास द्वारा बाहर निकालते हैं, उस को वनस्पतियां अन्दर ले जाकर उस के बदले प्राण वायु छोडती हैं। यूरोप के उत्तम भूगोल शास्त्री मिस्टर मार्सडन आदि अपनी पुस्तकों में लिखते हैं कि बाहर के सर्व प्रकार के वायव्य तत्त्वों का बल मानवी शरीर पर पूर्ण पडता है पर मानवी शरीर के अन्दरभी "सब प्रकार के वायु होते हैं" इस लिये वह बाहर के उक्त आघात का प्रतिकार करते रहते हैं और इस लिये मानवी शरीर बाहर की वायुसे दब कर कुछभी पीडा अनुभव नहीं कर सकता। उन के इस कथन से यह बात निकलती है कि जिसको हम व्यान वायु कहते हैं उसी का नाम उन की भाषामें नाइट्रोजन होना चाहिये। कारण यह कि व्यान वायु सर्व शरीर में गति करता रहता है और यूरोप के विद्वान् यही कार्य वायू मंडलके दूसरे भाग 'नाइट्रोजन का बाहर के जगत्में दर्शा रहे हैं। अतः नाइट्रोजन के अर्थ व्यानवायु हुए।

वायु की अटल गति तो सब जानतेही हैं पर तापके कारण इस की गति प्रचण्डरूप धारण कर लेती है। उत्तरीय अर्द्ध भूलोक में **प्रचण्ड पवन** उत्तर-पूर्वीय दिशाओं से चला करती

है और दक्षिणीय अर्द्ध भूलोक में दूसरी **प्रचण्ड पवन** दक्षिण पूर्वीय दिशाओं से आया करती है। पृथिवी की भूमध्य रेखासे २५ अंश (२२५० मील) उत्तर वा दक्षिण के प्रदेशमें इस प्रचण्ड पवन का मानो **राज्य** है। यद्यपि इन को अंग्रेजी में Trade Winds अथवा वणिक पवन कहते हैं पर इस का यथार्थ नाम प्रचण्ड पवन ही है। अनेक जल यान (जहाज वा अगन् पोत) इस प्रचण्ड पवन के भयंकर कोप में आही जाते हैं। दूषित वायु मंडल की भारी शुद्धि कर्त्ता यह प्रचण्ड पवन हैं।

इस के अतिरिक्त दो प्रकार की षण्-मासिक-पवन हैं। इन का विशेष सम्बन्ध उत्तरायण वा दक्षिणायन से समझ लेना चाहिये। **वर्षा वाहक पवन** भी इन को कहते हैं।

भारत वर्षमें दक्षिण पश्चिमीय वर्षा वाहक पवन मई माससे अक्टूबर मास तक चला करती है, और अक्टूबरसे जो मई तक वर्षा वाहक पवन चलती है उस का नाम उत्तर–पूर्वीय पवन है। हमारे ग्रामीण लोग इन को केवल 'पछमँ' और 'पूर्वा' का नाम दिया करते हैं, वह इन के गुण कर्म स्वभाव को भली प्रकार जाने हुए हैं। मध्यसागर (मेडागासकर), बराजील, गाईना और आस्ट्रेलिया (राष्ट्रालय) आदि खंडों में इसी प्रकार की वर्षावाहिनी पवन चला करती हैं। इन पवनों के विषय में युरोप के भूगोल शास्त्री लिखते हैं कि:–

" It arrives heavily laden with vapour. "

(अर्थ) यह पवन वाष्प से अत्यंत लदी हुई पहुंचा करती है ।

वाष्प जिससे रेल गाडी चलती है, उस में कितना बल है ? उस वाष्प रूपी मेघों को जो समुद्रस्थ प्रदेशों से उठाकर नाना देशों में **वायु** लेजाता है वह कितना महान् शक्ति वाला होगा उस का अनुमान हम कर सकते हैं ।

इस महान् स्वरूप वाले वायु का बोधक शब्द वेद में **बृहस्पति** आया है । आप्टे कृत कोष में बृहत् के अर्थ 'Great' अर्थात् **महान्** और 'Large' **विशाल** दिये हुए हैं, और पति शब्द के अर्थ रक्षक के हैं । अतः **बृहस्पति** के अर्थ यहां पर प्रसंगानुसार **महान् तथा विशाल** का **रक्षक** ऐसे हुए । अब प्रश्न यह हो सकता है कि यह महान् तथा विशाल मेघों का रक्षक यथार्थ में किस को समझा जावे । इस के उत्तर में इसी शब्द के दूसरे अर्थ जो कोष में दिये हुए हैं वह इस प्रकार हैं:—[बृहतः वाचः पतिः] अर्थात् **वाणी का पति** ।

वाणि का पति (रक्षक) वायु है ।

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषाम् पाहि श्रुधी हवम् ॥ ऋ. मं. १ सू. २ मं. १ ॥

इस मंत्र की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए स्व० महा मुनि पं. श्री गुरुदत्तजी एम. ए. ने उत्तमता से सिद्ध कर दिया कि

वाणीका रक्षक वास्तव में वायु ही है। युरोप के पदार्थ विज्ञानी भी ऐसा ही मानते हैं।

अतः यहां पर बृहस्पति शब्द के अर्थ **वायु** के हुए।

महर्षिदयानन्दजीने पंच महायज्ञ विधि पुस्तक में जो इस शब्द के भौतिक अर्थ किये हैं वह इस प्रकार हैं। उस में वायु के अर्थों का समावेश हो सकता है।

"(ऊर्ध्वादिक्) "........बृहतामाकाशादीनांच "

अर्थात् बृहत शब्द के भौतिक अर्थ वह आकाश आदि करते हैं।

आदि से हमने वायु के अर्थ यहां पर ले लिये, जो जहां कोषानुसार हैं, वहां ऋषि दयानन्दकृत अर्थों के अन्दर आ जाते हैं। कारण कि आकाश के पीछे आदि शब्द से वायु का ही ग्रहण हो सकता है, सो यहां पर हमने किया है।

बंबई गुरुकुल के आचार्य्य **पंडित श्री मयाशंकरजी** शास्त्री तथा महा विद्यालय ज्वालापुर के मुख्य संस्कृत अध्यापक **वेदज्ञ पंडित श्री भीमसेनजी शर्माभी** बृहस्पति के अर्थ यहां पर वायु के किये जाने से सहमत हैं।

यह वायुमंडल किधर है? इस का उत्तर मंत्र के प्रथम भाग में "ऊर्ध्वादिक" इन शब्दों द्वारा दिया गया है।

'ऊर्द्ध' शब्द के अर्थ आप्टे कृत कोषमें Above अर्थात् **ऊपर** के दिये हुए हैं। अतः ऊर्ध्वादिक् के **अर्थ ऊपरकी**

दिशा के हुए । सबही पदार्थ विज्ञानी युरोप के लिख रहे हैं कि **"हमारे शिर के ऊपरकी दिशामें वायु मंडल एक महान् सागर के रूपमें भूगोल के तलको ढांप रहा है ।"** वेदमंत्रभी यही तत्व दर्शा रहा है कि ऊपरकी दिशाका स्वामी वायुमंडल है ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणाश्च मुखादग्नि रजायत ॥

(यजु. अ. ३१ मं. १२)

अर्थ........(श्रोत्रात्) श्रोत्र नाम अवकाश रूप सामर्थ्य से (वायुः) वायु (च) तथा आकाश प्रदेश (च) और (प्राणाः) जीवन के निमित्त दशप्राण (अजायत) उत्पन्न हुआ "

(देखो ऋषि दयानन्द भाष्य)

इस मंत्र से यह बात सिद्ध होती है कि **श्रोत्र इन्द्रिय** से जो शब्द वा वाणी ग्रहण होती है वह **वायु** तथा **आकाश** और **प्राणवायु** से संबंध रखती है । दर्शन शास्त्रों में शब्द को आकाश का गुण कहा है । उस का मूलभी इसी मंत्र में आ गया। यदि एक घंटी को हम चाबी देकर किसी ऐसे स्थलमें रहने दें जहांका वायु, वायु निष्कारक यंत्र द्वारा निकाल दिया गया है तो चाबी लगी हुई घंटी बराबर हिलती रहेगी पर उस का शब्द हमारे कानतक नहीं पहुंचेगा । घंटी का हिलना प्रघट करता है कि आकाश संघर्षण क्रिया से शब्द तो बराबर उत्पन्न हो रहा है

पर वायु विना वह हमारे कानोंतक नहीं पहुंच सकता। जब एक बालक बंसरी हमारे सामने बजा रहा हो और हम कानोंमें रूई देकर ऊपरसे कपडा बांध लें तो ऐसी दशा में बंसरी का मधुर शब्द हमें इस लिये सुनाई नहीं देता कि हमने कानमें वायु का प्रवेश रोक दिया। इन बातोंसे सिद्ध होता है कि आकाश का गुण शब्द है पर वायु उस का वाहक है। सूक्ष्म शब्द को स्थूल रूप देनेवाला वायुही है। युरोप के पदार्थ विज्ञानी अभीतक उक्त मंत्र वा दर्शन शास्त्रों के समान इस तत्व तक नहीं पहुंचे कि शब्द आकाश का गुण है। वह वायु को जो शब्द वाहक तो है ही शब्द जनकभी मान रहे हैं वायु निःसंदेह सूक्ष्म शब्द को स्थूल बनाने तथा उस को हमारे श्रोत्र तक पहुंचाने का प्रबल साधन है। इसी लिये तो उक्त वेदमंत्रने पहले वायु का और फिर आकाश का वर्णन श्रोत्रतक पहुंचाने की दृष्टिबिन्दु से किया है। अतः इस मंत्रसे यह वात खुल गई कि **वायु** को '**वाचा—पति**' वा '**बृहस्पति**' कहना सर्वथा सत्य है। हां यह ठीक है कि वायु के अतिरिक्त दूसरा वाचा-स्वरूप वा शब्दका मूल कारण आकाश है और उसका नाम भी **बृहस्पति** है। पर प्रसंगानुसार यहां आकाश के अर्थ करने की जरूरत इस लिये नहीं कि **वर्षा रूपी** बान वायु के ही ठीक घट सकते हैं, सर्व व्यापी आकाश तत्व के नहीं। इस लिये हम यहां बृहस्पति के अर्थ **वायु-मंडल** ही लेंगें जो आप्टेकृत

कोष, दयानन्द भाष्य पदार्थ विज्ञान तथा प्रसंगानुसार ठीक घट रहे हैं।

महर्षि दयानन्दजीने यजु. अ. १४ के मं. २९ का उत्तम भाष्य करते हुए **बृहस्पति** शब्दके अर्थ आर्ष व्याकरण अनुसार प्रसंगानुकूल ' वैश्य ' के इस प्रकार किये हैं।

" (बृहस्पति) बृहतांपालको वैश्यः "

भाषा:–" (बृहस्पति) बडे बडे पदार्थोंका रक्षक वैश्य ।"

इस प्रकार बृहस्पति शब्द के अर्थ उक्त आर्षभाष्य अनुसार **बडे बडे पदार्थोंका रक्षक ' वायु '** यहां पर सुसंगत ही हैं।

मंत्रका शब्दार्थ:—

(**ऊर्ध्वादिक्**) ऊपर की दिशा का (**बृहस्पति**) वाचा पति अर्थात् वायुमंडल स्वामी है। (**श्वित्रः**) अर्थात् **झरनेवाली (वस्तु)** अर्थात् **मेघ** (**रक्षिता**) रक्षक हैं और (**वर्ष-इषवः**) वर्षा की धारें, बानवत् हैं।

शब्दार्थ पर विशेष विचार

" **ञिष्विदा गात्र प्रस्रवणे** " इस धातु से, श्वित्री श्वित्र शब्द बनता है और प्रस्रवण का अर्थ भाषा में झरना होता है, इस लिये श्वित्रः के अर्थात् **मेघ** यथार्थ हैं।

पंडितश्री मयाशङ्करजी शर्मा तथा पण्डितश्री भीमसेनजी शर्मा भी उक्त **मेघ** अर्थ से **सहमत** हैं।

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति। मंत्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ ऋ. मं. १, अ. २२ सू. १६४ मंत्र १०।

इस मंत्र में पहिले तीन प्रकार की भूमियों, तीन प्रकार की सौर विद्युत तथा भूमि अग्नियोंका वर्णन है तथा वाचम् संबंधी निम्न तत्व दर्शाया है।

" **(ऊर्ध्व) ऊपर ऊंचा (एक) एक सूत्रात्मावायु** (तस्थौ) स्थिर होता है तथा (विश्वामिदम्) सब लोग उसको प्राप्त होते उस (वाचम्) वाणीको (मंत्रयन्ते) सब ओरसे विचारपूर्वक गुप्त कहते हैं वे (अमुष्य) उस दूरस्थ (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य के (पृष्ठे) परभागमें विराजमान होते हैं (न) नहीं दुःखको प्राप्त होते हैं।" (ऋषि दयानन्द भाष्य पृ. ६०१.)

उक्त मंत्र के दूसरे भागमें **ऊर्ध्वदिशा,** उसमें रहनेवाले सूत्रात्मा (सूक्ष्म) वायु और वायुसे विशेष प्रघट होनेवाली वाणी का वर्णन है। यह वाणी वायु में गुप्त रूपसे रहती है इसको अनुभव करनेवाला पंडित सूर्य्य के परभाग के विज्ञान को धारणकर मानसिक हर्ष को प्राप्त हो सकते हैं। ऋषि दयानन्दने यहां **मंत्र** शब्द के जो उत्तम अर्थ संस्कृत भागमें "(मन्त्र यन्ते) **गुप्तं भाषन्ते** " किये हैं, उसका आधार निरुक्त है।

हम ऊपरकी दिशा संबंधी अनुसन्धान कर रहे हैं अतः ऊक्त मंत्र ऊपर की दिशाका वर्णन करता हुआ वाणीपति सूत्रात्मा वायुका संबंध दर्शा रहा है। इस लिये "ऊर्ध्वादिक बृहस्पति" इत्यादि वचनों के भावार्थ की पुष्टि इस मंत्रसेभी समझियेगा। इस मंत्र का जो भावार्थ भाष्य में दिया हुआ है वह निम्न प्रकार है:—

भावार्थ:—"यस्सूत्रात्मा वायुरग्निं जलं पृथिवीं च धरति तमभ्यासेन विदित्वा सत्यां वाचमन्येभ्य उपदिशेत्।"

"जो सूत्रात्मा वायु अग्नि जल और पृथिवी को धारण करता है, उस का अभ्यास से जान के सत्य वाणी का औरों के लिये उपदेश करे।"

इस भावार्थ से यह पाया गया कि **वायु जल को भी धारण करता है**। इसी प्रकरण पर भूगोल शास्त्री लिख रहे हैं कि मौसमी हवाएं (वर्षाल-पवन) बादलों को जो जलरूप हैं उठा उठाकर लातीं और बरसाती हैं।

पंचपादं...............उपरे विचक्षणांसप्तचक्रे षलर आहुरर्पितम् ॥ ऋ. मं. १, अ. २२ सू. १६४ मं. १२

"(सप्तचक्रे) सात चक्र घूमने की परिधि विद्यमान उस (उपरे) **मेघमंडल** में (विचक्षणम्) **वाणी** के विषयको (अर्पितम्) स्थापित (आहुः) कहते हैं।"

उक्त वचनों से जहां भूमि का **गोल** होना सिद्ध होता है वहां ऊपर की दिशा से '**मेघमंडल**" का तथा "**वाणी** का संबंध दृढ रूप से है यहां दर्शाया गया है। अतः बृहस्पति की दिशा ऊपर की है और उस में मेघमंडल हैं इन सब तत्वों की पुष्टि इस मंत्रसे भी हो रही है।

वायु अटल गति स्वरूप है, यह बात युरोप के सब विज्ञानी मान रहे हैं। संस्कृत में "वा' धातु जिससे यह शब्द बनता है उस के मुख्य अर्थ 'गति" के ही हैं। ताप के कारण भूलोक म वायु की गति का भारी चक्र सदैव चलता रहता है। युरोप के विद्वान् लिखते हैं कि **तीन प्रकार** से वायु पर ताप का प्रभाव पडता है। प्रथम Radiation अर्थात् ताप के **प्रसारण** द्वारा। इस के दृष्टांत में वह कहते हैं कि सूर्य्य की ज्योतिमय ताप भरी रश्मियों के प्रसारणसे यह पहिले गरम हो जाती है और दूसरी वार तब जब यह रश्मिएं वायु मंडल में भूमि में से लौट कर 'कृष्ण तथा उष्ण' Dark hot-rays रश्मियों के रूप में प्रवेश करती हैं। "These dark rays heat the air much more than the bright rays." इन कृष्ण रश्मियों से वायु ज्योतिमय रश्मियों की अपेक्षा अत्यंत गरम हो जाती है। इसके अतिरिक्त सीधी किरणें अधिक ताप प्रद होती हैं।

दूसरे प्रकार अर्थात्–ताप–प्रवेशन (Conduction) के विषय में युरोप के पंडित कहते हैं कि जब पदार्थ परस्पर संसर्ग

१५

में आते हैं तो एक की गरमी दूसरे में प्रवेश कर जाती है। उन का सिद्धान्त है कि:—

"Solids are better conductors of heat, than liquids. Liquids are better than gases."

(अर्थ)—घन वा पार्थव पदार्थ गरमी के, जलादि प्रवाही पदार्थों की **अपेक्षा उत्तम वाहक हैं** और गैसों वा वायव्यपदार्थों की **अपेक्षा** जलादि प्रवाही पदार्थ **उत्तम** गरमीवाहक हैं।

भूतल के ऊपर की वायु संसर्ग से गरम हो जाती है और वायु के उपरीय तलों में Convection (ऊर्द्ध तथा अधोगमन) द्वारा संचरित हो जाती है। यह **तीसरा प्रकार** है जिस के द्वारा वायुमंडल गरम होता है।

वायु की गति का अनुमान पश्चिमी विद्वान् इस प्रकार करते हैं।

७ मील प्रतिघंटा **सहजपवन** (Light breeze) चला करती है।
२५ मील प्रतिघंटा **तीव्रपवन** (Strong wind) ,,
५० मील प्रतिघंटा **चंडीपवन** (Gale of wind) ,,
८० मील प्रतिघंटा **प्रचंडपवन** (Hurricane) ,,

"हम फेफडों से ही हवा नहीं लेते हैं, त्वचा द्वारा भी उस का कुछ भाग हमारे अन्दर जाया करता है। त्वचा में जो अनेक बारीक छेद हैं उन से भी हम हवा लिया करते हैं।.... हमारे पाखाने, बाडे और बेजगह पेशाब करने के स्थान ही हवा बिगाडने के प्रधान साधन हैं। पाखानों की गन्दकी से होने वाली

हानियों का ख्याल बहुत ही कम आदमियों को होता है। बिल्ली और कभी कभी कुत्ते पाखाना फिरने के पहले पंजों से एक गढासा खोद लेते हैं और पाखाना फिर कर उस पर धूल डाल देते हैं। पाखानों में मिट्टी के गमले में राख या सूखी मिट्टी भर रखे, पाखाने जानेवाला लौटती बार मैले को राख या सूखी मिट्टी से पूरा ढक दे, इस से बदबू नहीं फैलती।....मैला खुला रहने से हवा में कितनी बदबू फैलती है। जो मैला हमारे शरीर के अन्दर से निकलता है और जिसे हम दूसरे मनुष्य से उठवाते हैं उसे स्वयं साफ करने में क्या हर्ज है? इस काम में तनिक भी बुराई नहीं है। जब गमला या बालटी मैले से भर जाय तो उसे उठा ले जा कर मैला तीन बिलस्त गहरे गढे में डाल कर उस पर मिट्टी की मोटी तह जमा दे। बाहर पाखाना जाने की आदत हो तो घर से खूब दूर जाना चाहिये। वहां बाहर पैर या हाथ से एक छोटा सा गढा खोद कर अपना काम करें और खोदी हुई मिट्टी उस के ऊपर पाट दे।........घर से दूर सूखी जमीन पर पेशाब करें और उस पर धूल डाल दें।....मैला बहुत गहराई में गाडें। एक तो इस हालत में उस पर सूर्य्य की गरमी का असर नहीं होता, दूसरे गहरे गडे हुए मैले से आसपास के पानी के सोतों के बिगड जाने का खटका रहता है। गहरी संडासों से यही बडी हानि होती है।"

(१) **मेघ आदि वर्णनः**—जो **वाष्प**, पृथिवी तल वा

पत्तों के तल पर जल कण के रूप में सायंकाल, पृथिवी के ठंडे होने के कारण बन जाता है, उसका **ओस**, शबनम वा Dew नाम है।

(२) जब भूमितल अत्यंत ठंडा हो जावे तो वाष्प एकदम बरफ (हिम्) समान् जम जाता है। इस हिम स्वरूप वा जमी हुई ओस को पाला वा Hoar Frost कहते हैं।

(३) सूर्य्य-अस्त के पीछे, नदी, नदों (दरयाओं) वा सरोवरों के निकट धुंद देखने में आती है। नद (दरया) के निकट की भूमि की हवा दरया के अपनी ऊपर की हवा (वायु) की अपेक्षा बहुत जल्दी ठंडी हो जाती है, क्योंकि जमीन जल की अपेक्षा गरमी शीघ्र निकालती है। जल के ऊपर की हवा, ऊपर उठेगी और ठंडी हवा जल की तरफ उस की जगह (स्थान) लेने के लिये, गति करेगी और जल के ऊपर की हवा इस प्रकार ठंडी हो जावेगी और पूर्ववत् बहुत जल धारण करने के योग्य नहीं होगी। इस आर्द्रता (नमी) की अधिकता के स्वरूप का नाम **कोहर** वा Mist है।

(४) जब हवा में उडनेवाले धूल वा मट्टी के छोटे छोटे कणों के इर्दगिर्द (सब तरफ) वाष्प शीत के कारण सूक्ष्म जल बिन्दु समूह का रूप धारण करे तो उसको **कोहरा** वा Fog कहते हैं।

(५) **मेघ वा बादलः**-जब गरम हवाकी ऊपर जानेवाली लहर, अदृश्य आर्द्रता वा वाष्प से लदी हुई **शीत अवस्था** को वायुमंडलके ऊंचे प्रदेशोंमें प्राप्त करती है, तब मेघ (बादल)

बन जाता है। इस लिये बादलों को वायु के ऊंचे प्रदेश के कोहर (Mists) तथा **कोहरा** (Fogs) समझिये। एक पश्चिमी भूगोल शास्त्री का वचन है कि "Clouds are mists and fogs high up in the air." अर्थात् वायु के ऊंचे प्रदेश के कोहर और कोहरा के स्वरूप वाले बादल हैं।

इस से हम कह सकते हैं कि वर्षा का **गर्भस्वरूप** मेघ हैं। इस लिये लिये वेदमंत्र में जो **श्वित्र** शब्द आया है वह किस उत्तमतासे मेघ के उक्त स्वरूप का बोधक है इस को विचारशील जान सकते हैं।

ईश्वर की महिमा देखिये कि 'Dirty or Salt-water' अर्थात् मलीन वा नमकीन जलों से उत्पन्न होनेवाले बादलों का जल **पूर्ण रूप से शुद्ध** होता है।

"A cloud is held up by the air underneath it."

अर्थात बादल (मेघ) को उस के नीचे का वायु धारण किये रहता है।

वेदमंत्र के अलंकार में जब वर्षा बान यत् है तो मेघ रक्षक और मेघों को जो धारण करे वह उन का **अधिपति** बृहस्पति वा वायु ही हो सकता है। देखिये ऊपर के अंगरेजी विद्वान् के बचन से भी मेघ को धारण करने वाली शक्ति वायु ही है। **इस लिये बृहस्पति के अर्थ वायु के करने से कैसी उत्तम संगति बैठती है।**

वर्षा:—जब अदृश्य बादल वायु में ऊंचे चढते हैं तो ऊपर अधिक शीतल पवन के कारण कुछ कुछ जल रूप बनजाते और नजर आने लगते हैं वायु उन को चारों तरफ धक्के देती है और ज्यूं ज्यूं वह अधिक ठंडी वायु से टकराते हैं त्यूं त्यूं वह अधिक संघट्ट वा घनघोर रूप धारण कर अधिक दीखने लगते हैं। फिर अत्यंत शीतल हो जाने पर **जलकण** का रूप धारण करते हैं। फिर ज्यूं ज्यूं जलकण बडे तथा घन (संघट्ट) होते जाते हैं, त्यूं त्यूं बादल अधिक काले रूप में नजर आने लगते हैं। अन्त को जब जलकण बहुतभारी हो जाते हैं तो अब वायु की पकड में वह रह नहीं सकते इस लिये **वर्षारूप** में वह नीच बरसने लगते हैं। मानो वर्षा रूपी अमृत के बाण ऊर्ध्व–दिशासे छूट रहे हैं।

जब बादल का रूप श्वेत प्रतीत हो तो समझना चाहिये। कि यह अति शीत प्रधान ऊंचे प्रदेश में पहुंच गया है।

जब वर्षा के बिन्दु बहुत ऊंचाई से नीचे पडते हैं तो अधिक शीत के कारण यह हिम रूप हो जाते हैं। इन को **ओले** वा Hailstones कहते हैं।

वायुमंडल के अति ऊर्द्ध प्रदेशों में जहां अत्यंत शीत है जल वाष्प जम कर हिम के छोटे छोटे भागों का रूप धारण कर लेता है तो सूक्ष्म हिम-वर्षा होती है। यह हिम खंड वर्षा के बिन्दुओं से भी छोटे होते हैं, इतने छोटे कि इस हिम वर्षा को हिम-धूल-वर्षा कहना चाहिये।

युरोप के पंडित लिखते हैं कि पृथिवी के त्रसरेणु जो ऊपर वायुमंडल में चढ जाते हैं उन को केन्द्र बना जलबिन्दु वर्षाकार में नीचे पडते हैं मानो कि पार्थिव त्रसरेणु बीज बनते हैं जिन को सब तरफ वर्षाबिन्दु घेरे हुए वर्षाकार में नीचे गिरते हैं। इसी कारण वर्षाजल एक गठरी के रूप में इकट्ठा नहीं गिर सकता किन्तु वर्षाबिन्दु के रूप में गिरता है इस लिये धूल के कण वा पार्थिव त्रसरेणु बडा उपयोगी उक्त काम ऊपर जा कर करते हैं।

युरोप के पण्डित मानते हैं कि बादल तथा वायुमंडल कभी पृथिवी को छोड कर कहीं नहीं जा सकते--किन्तु इस के संगी सदा बने रहते हैं। इस का कारण भू--आकर्षण की सत्ता है।

१. वर्षाजल भूतल में जाकर वहां रहता है। इस से वनस्पतियों का पालन होता है! एक युरोप के विद्वान का कथन है कि:—

" There we are sure to find plants of various kinds that suck up a good deal of this water into themselves by their roots & then give it back to the air. "

(अर्थ) " यहां निःसंदेह नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं जो इस जल के भारी अंश को अपने अन्दर जड़ों द्वारा चूस लेती और पीछे वायु में दे देती हैं। '

भारतीय आर्यों में वट, पीपल आदि बडे बडे छायादार वृक्षों को सुरक्षित रखने तथा ग्रामों के निकट गोचर वा जंगल (रख)

सुरक्षित रखने की जो उत्तम प्रथा प्राचीन कालसे चली आती है उसका एक महान् लाभ यह है कि गोचर तथा जंगलों की रक्षासे वर्षा प्राप्तिमें सहायता मिलती है। कारण कि वृक्ष भूतल से जल को चूस लेने के पीछे वायु मंडलमें उस को पुनः डालते रहते हैं। गोचरों वा जंगलों के अभावसे वर्षाकी न्यूनता हो जाती है, यह तत्त्व उक्त अंगरेज महोदय के वचनोंसे सिद्ध हो रहा है। (२) कुछ भाग वर्षाजल का सूर्य रश्मियों द्वारा वायु मंडल में जाता है। (३) बहुत भारी अंश नीचे के तल में जाता और कूप, बावली, सरोवर, तालाब, चशमों, और झरनों आदि के रूप में प्रघट होता है। (४) एक भारी भाग बरसाती नालों नदी और नदों का पोषण करता है। (५) नदी और नदों द्वारा, अन्त को सागर वा समुद्र में जाता है—जहांसे सूर्य्य किरणों द्वारा आया था।

एक पाश्चिमी लेखक का कथन है कि भारी वर्षा के कारण समुद्र में "Sea-quake" "सागर-कंप" होते हैं। हमारी वृहत्संहिता ने जल कंप माना है। भारतीय आर्य्य शास्त्रों में जल का स्वभाविक गुण शीतत्व वर्णित है। युरोप के पदार्थ विज्ञानी एक तरफ तो मानते हैं कि ओक्सीजन तथा हाईड्रोजन दो गैसों वायव्य पदार्थों से जल बना है। पर साथ ही उस के स्वाभाविक शीत गुण को भी अनुभव करते हैं। जल किस प्रकार सूक्ष्म **जलतत्व** (हाईड्रोजन), प्राणवायु (ओक्सीजन) तथा

अग्नितत्व से बना है और हाईड्रोजन वायुतत्व नहीं, इस बात की पूरी मीमाँसा हमारी पुस्तक * **शरीर विज्ञान** में पाठक देख सकते हैं। इस पुस्तक में शास्त्रों के प्रमाण, युक्ति तथा स्वयं युरोप के महान् रसायन शास्त्रियों के मत से उक्त आर्ष सिद्धान्त को सिद्ध करते हुए, ओक्सिजन तथा हाईड्रोजन को वायु रूप मानने वाले वर्तमान युरोप के रसायन शास्त्रियों का अकाट्य युक्तियोंसे खंडन किया गया है। इस स्थल पर हम शीतपन संबंधी उन के ही लेख को नीचे उद्धृत करते हैं:--

" However hot we make them and however much Oxygen, we have, we can not burn water or sand or flint or clay or gravel for these things are already burnt. "

(अर्थ) तथापि कितना हम उनको तपावें और कितनी भी ओक्सीजन हमारे पास हो तो भी हम पानी वा रेत वा पथ्थर वा मिट्टी वा पाषाण कंकर को जला नहीं सकते कारण कि यह पदार्थ एक वार जल चुके हैं।

" Through out their life plants continually give off water in the form of vapour, which is exhaled through the numerous openings spread over their

* यह सचित्र पुस्तक जिसका दूसरा संस्करण हो चुका है हिंदी साहित्य का एक रत्न है। जल की बनावट आदि का सच्चा रूप जाननेवालों को अवश्य पढनी चाहिये. प्राप्ति स्थान जयदेव ब्रदर्स बडोदा तथा मूल्य ।=)

leaves. This process supplies a large amount of water vapour to the air."×

उक्त नामी पदार्थ विज्ञानी दर्शा रहा है कि वृक्षादि का होना वर्षा लाने का एक कारण है। इस समय भारत में जंगल बहुत कट रहे हैं और यदि यह कुप्रथा बन्द न हुई तो वर्षा का अकाल उन प्रान्तों में इस से भी बढ कर होगा। इस लिये जब वर्षा के लिये वृक्षों का होना युरोप के महान् पंडित मान रहे हैं तो हमें आशा करनी चाहिये कि अब जंगलों की रक्षा का युग आरंभ होगा।

हवन से वर्षा

"**पृथिवी के कण** जो वायु मंडल में पहुंचते हैं, वह **ठंडे** होते हैं, **उनको छूनेसे** तथा ऊपर के मंडल की ठंडकसे वर्षा जल बनने लगता है।" एक सुलेखक का वचन है कि:–

"The hotter the air, the higher it rises, carrying up the water-vapour in it. Light air rises, heavy air sinks. And water vapour as we know is *much lighter* than pure air. Air, which is full of water vapour is there fore much lighter than dry air and rises. Heated air, which has expanded can hold much more moisture in it than cold air, for

× Physics & Chemistry. By Sir Richard Gregory & A. T. Simmons B. Sc. London.

cold air is denser, its particles are closer together and there is less room for the particles of vapour in it." ‡

"The intense summer-heat of the plains of Rajputana and the eastern Punjab the Indian Desert is therefore of very great benefit to the rest of India, for it gives it the South West monsoon."

(अर्थ) जितनी हवा अधिक गरम होगी उतनीही ऊंचे वह चढेगी और अपने साथही जल वाष्प लेकर जाएगी। हलकी हवा ऊपर उठती है, भारी हवा नीचे दबती है। जलकी भांप (वाष्प) जैसा कि हमें ज्ञात है वह शुद्ध हवासे बहुतही हल्का होता है। वह हवा जिसमें जलवाष्प (भांप) भर रहा है, इस लिये वह सूखी हवाकी अपेक्षा अधिक हलकी है और ऊपर चढती है। गरम फैल जानेपर अपने अन्दर, शीत हवाकी अपेक्षा, अत्यंत जलांश धारण कर सकती है, कारण यह कि ठंडी हवा अधिक संघट होती है और इसके त्रसरेणु, इकट्ठी हो जानेसे अपने अन्दर वाष्प (भांप) के त्रसरेणुओंके लिये थोडी जगह रखते हैं।"

गरम ऋतु संबंधी राजपुतानाके समग्र मरुस्थलोंकी तथा पूर्वी पंजाबकी जो भारतीय मरुस्थल है अत्यंत गरमी इस कारणसे शेष भारतवर्षके लिये महान् लाभदायक है, कारणकि यह दक्षिण पश्चिम वर्षाल-पवन उत्पन्न करती है। उक्त उत्तम लेख पर विचार

‡ Geography for Senior Classes. By E Marsden B. A.

करनेसे हम **हवनयज्ञका** भारी संबंध वर्षा लाने से अनुभव कर सकते हैं। कारण कि [१] हवनके पार्थिव अंश ऊपर जाकर अपने स्वभावके कारण ठंडे हो जावेंगे और उनको छूनेसे मेघके कण वर्षारूप धारण कर सकेंगे—(२) प्रचंड **गरमी** बडे बडे हवन· यज्ञोंकी जो लगातार कुछ दिन किये जावें हवाको भारी गरम कर के बहुत दूर ऊंचे पहुंचा सकती हैं और जैसा कि उक्त लेख बत-ला रहा है **गरम हवामें अधिक सामर्थ्य फैलने** तथा **अधिक जलांश धारण करनेका है।**

भारी हवन की क्रियासे जो हवा गरम हो जावेगी वह जरूर **"फैलेगी"** और जहां वर्षाकम होती है वहां फैलने के कारण पहुंच सकेगी और साथही गरम हवा अपने गरमपन के कारण **अधिक जलांश धारण करती हुई जाएगी** इस लिये भारी हवनसे वर्षा का आना उक्त प्रमाण के आधार से सिद्ध हो गया।

पुराने समय में जब ३३ करोड आर्य देवता दो काल हवन करते थे और चौमासे की ऋतु में अथवा अन्य अवसरों पर यज्ञ विशेष होते थे तो इस में कुछ भी संदेह नहीं कि जो वेदों तथा गीता में कहा गया है कि यज्ञ से मेघ होते हैं वह सत्य बात अब युरोपके महान् विद्वानों के वचनों से भी मानो सिद्ध हो गई। हवन करने से भारी रोग तथा अदृश्य रोग जन्तु (Germs) नष्ट हो जाते हैं यह उस का दूसरा महान् लाभ है। इस विषय संबंधी

अनुसन्धान पूर्वक लेख तथा पश्चिमी डाक्टरों के प्रमाणों का संग्रह जिज्ञासु **संस्कार चन्द्रिका** नामी हमारे ग्रन्थ में देख सकते हैं ।

पार्थवत्रसरेणुः—पश्चिमी विद्वानोंका कथन है कि यदि अन्धेरे कोठेमें किसी छिद्रसे सूर्य्यरश्मि प्रवेश करके जावे तो मट्टी के त्रसरेणु दृष्टिगत होते हैं। ज्यूं ज्यूं **भूतल** टूटता है त्यूं त्यूं त्रसरेणु वायुद्वारा सर्वत्र फैल जाते हैं। **ज्वालामुखी** पर्वतभी यह पार्थव त्रसरेणु फैलाते हैं। **उल्कापिण्ड** (Shooting Stars) के गिरनेसेभी उक्त पार्थव अंश पडते हैं और उनको Cosmic dust अर्थात् 'विराट्-धूल' कहते हैं।

वायुमंडलके यह पार्थव अंश समुद्रजलमें नीचे जाकर कीच बनाते और फिर अन्तको युगान्तर में उससे Solid Rock वा कठिन पर्वत बनते ह।

"It is the dust in the air, which gives the sky its blue and its brilliant tints at sun rise and sunset"

(अर्थ) " हवामें जो पार्थवअंश (धूल) रहती है, उसके कारण आसमान नीले रंगका दृष्टि पडता और सूर्योदय तथा सूर्य्य अस्तके समयपर चमकीले रंग दीखते हैं। "

" Without dust in the air, there would be no rain, no mists or clouds or snow or dew. All the forms of water, are made by the condensing of the water vapour in the air, upon the invisible particles of dust. "

(अर्थ) यदि हवामें यह धूल न होती तो वर्षा, कोहर, बादल, हिम और ओसभी न हो सकती। जलके यह नाना स्वरूप, धूल के अदृश्य अणुओं पर, हवा के अन्दरके जलभांप के जमने वा शीत अवस्था प्राप्त करने से होते हैं।

प्राण लेनेपर जो अपान वायु बाहर मनुष्यादि निकालते हैं, वह वायु में रहता है और वृक्ष उस को अपना भोजन बनाते हैं। यह वृक्ष वर्षा के भारी सहायक हैं।

"बादल अपान वायु (Carbonic acid gas) तथा वाष्प यह उष्णताके मन्द वाहक (Bad conductors of Heat) हैं।

" बादल वाली रात को शीत कम होता है, इस लिये कि बादल गरमी को मंद वाहक होनेसे रोकते हैं।"

" पर्वतों पर वायुका बल (दबाव) कम होता है। इसी लिये Barometer (वायु-मापक) का पारा नीचे गिर जाता है।"

" वायु के ताप के कारण ही पवन चला करती हैं जो भूमि को भी गरम वा ठंडा उस का स्पर्श करने से बना देती हैं। यही प्रचंड गरम पवनें अपने संग बादल लाती हैं।"

इस लिये हमें याद रखना चाहिये कि १ वायु जीवनाधार है। २ वायु मेघवाहक है ३ वायु वाणिपति है ४ वायु पार्थिव अंश धारी है।

"वायु और भूमि तीन प्रकार से गरम होती हैं। (१) ताप प्रसारण वा Radiation द्वारा (२) ताप-प्रवेशन वा Conduction द्वारा (३) ताप के ऊर्द्ध तथा अधो-गमन Convection द्वारा।

इस लेख को समाप्त करने से पूर्व हम महर्षि स्वामी दयानन्दजी कृत **सत्यार्थप्रकाश** ग्रन्थ से निम्न लेख उद्धृत करते हैं जो इस से संबंधित है:—

"(प्रश्न) यह जो ऊपर को नीला और धुंधलापन दीखता है वह आकाश है वा नहीं?

(उत्तर) नहीं। (प्रश्न) तो वह क्या है?

(उत्तर) अलग अलग पृथिवी, जल और अग्नि के त्रसरेणु दीखते हैं। उस में नीलता दीखती है, वह अधिक जल, जो कि वर्षता है, सो वही नीला, जो धुंधलापन दीखता है वह पृथिवी से धूली उड कर वायु में घूमती है वह दीखती और उसी का प्रतिबिम्ब जल वा दर्प्पण में दीखता है, आकाश का कभी नहीं।"

मनसा परिक्रमा के छ मंत्रों में नमः शब्द का प्रयोग और उस का भाव हम ऊपर अनेक स्थलों पर दिखा चुके हैं। नमः शब्द का भाव अनुकूल चलने का है। मनुष्य समाज में जब बडा छोटे के लिये नमः, नमस्कार वा नमस्ते का प्रयोग करे तो इस का भावार्थ यह होगा कि बडा छोटे के अनुकूल चलने के भाव को प्रगट करता है। मां बाप बालकों को खिलौने देकर उनकी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। छोटे बडों की आज्ञा पालने वा सेवा करनेसे उनके अनुकूल चलते हैं। स्त्री पुरुष वा पति पत्नी जो मित्रवत् समान हैं वहभी इसके द्वारा एक दूसरे के

अनुकुल चलनेका भाव को प्रगट करते हैं। इसी लिये प्राचीन वैदिक समाज में आर्य्य सज्जन एक दूसरे को नमस्ते करतेथे। वाल्मीकि कृत रामायण में "नमस्तेऽस्तु" के उत्तम दृष्टान्त मिलते हैं। कठोपनिषद् में ऋषि शिष्य को नमस्ते कह रहा है।

परस्पर--अनुकूल वर्त्ताव करने को अंगरेजी में Harmony and Co-operation यह दो शब्द प्रगट कर सकते हैं। वाह्य--चिन्ह (Symbol) द्वारा इसी भाव को पुराने आर्य्य हाथ जोडकर दर्शाते थे। जब कोई किसी को नमस्कार वा नमस्ते करता है तो वह साथ ही दोनों हाथ जोडता है। हाथ शक्ति का बोधक है। दोनों हाथों का जोडना, परस्पर अनुकूल चलने, वा शक्तियों के **संगठन** के भावका बोधक है। आज कल सभा, समाज, संघात् वा संगठन में प्रगति है यह तत्व भारतीय आर्य्यबन्धु जान गये हैं। पुराने ब्राह्मण इसी भाव को मिलते समय नमः वा नमस्कार वा नमस्ते द्वारा जहां मुखसे उच्चारण करते थे, वहां वाह्य चिन्ह रूपसे अपने दोनों हाथों को जो पृथक् हों, उस पृथकपन की अवस्थासे हटाकर जोडकर, समाज वा संघटन के रूप में दर्शाते थे। प्राचीन आर्य्य जाति के नाना अंग जो इस समय सनातनी आर्य्य, वैदिक आर्य्य, बौद्ध आर्य्य, जैन आर्य्य तथा सिंह आर्य्य के नामसे आर्ष खंड (Asia) में प्रसिद्ध हैं, इनमें **हाथ जोडने** की उत्तम प्रथा आज तक विद्यमान है।

इति

संस्कार चंद्रिका

आर्यसमाजकी अनेक संस्थाओंमें यह पाठ्य पुस्तक है

युरोप के भारी विद्वानोंने इस समय अपनी प्रजा की उन्नति के लिये जो अति उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं—उन के नाम इस प्रकार होते हैं (१) एक कुमार वा कुमारी को क्या जानना चाहिये (२) एक विवाहित पुरुष वा स्त्री को क्या जानना चाहिये (३) एक वृद्ध पुरुष वा वृद्धा को क्या जानना चाहिये हमारे ऋषियोंने सोलह संस्कारों के जो ग्रन्थ रचे उन में बालक, कुमार, कुमारी, विवाहित दम्पति, वृद्ध वानप्रस्थी आदि सब को आयु के किस काल में अपनी आयु संबंधी क्या क्या बातें जाननी तथा करनी चाहियें यह सब कुछ लिखा है। महर्षि दयानन्द कृत संस्कार विधि इस विषय का सुप्रसिद्ध अति उत्तम ग्रन्थ है, पर मुक्तिधाम सिधार जाने के कारण उस की व्याख्या ऋषि वर न कर पाए। इस ग्रन्थका अनुवाद तथा व्याख्या वेदज्ञ श्री पं० भीमसेनजी शर्मा तथा राजरत्न श्रीआत्मारामजी अमृतसरी ने इस उत्तमता और अनुसंधानपूर्वक की है कि कोई शंका बाकी रहने ही नहीं दी। युक्ति और प्रमाण के उपरान्त स्वयं युरोप के भारी विद्वानों के वचनोंसे ऋषियों के संस्कारोंका महत्व दर्शाया गया है। इस ग्रन्थ के पढनेसे छोटीसी छोटी बातकी खूबी आप समझ सकेंगे। देशभर के सभी समाचार पत्रों ने इस को भारी गृह उपयोगी ग्रन्थ दर्शाया है—प्रत्येक कुमार, कुमारी, विवाहित पुरुष तथा स्त्री, वृद्ध और वृद्धा को अपनी आयु तथा जीवन सफल करने का यह शास्त्रीय मार्ग बतला रहा है। दो संस्करण इस के हो चुके हैं—यह तीसरा शताब्दी संस्करण सुप्रसिद्ध वैदिक यंत्रालय अजमेरसे छप कर तैयार है। ८५० पृष्ठों का है। इतने बडे ग्रन्थ का मूल्य केवल ३॥) है।

जयदेवब्रदर्स बड़ोदा